ISSN : 0373-1200
अगस्त 200
अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका
विज्ञान
मूल्य : 9.00 रु०
वन्य जीव संरक्षण क्यों ?
ड्रैगन फ्लाई
गौरैया भी फुर्र
पक्षियों की उड़ान
ताजमहल का संरक्षण
विज्ञान परिषद्
प्रयाग
विज्ञान परिषद् प्रयाग
सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 89 अंक : 5
अगस्त 2003

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० एम.जी.के. मेनन

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान परिषद् प्रयाग के लिए
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित
फोन : 2502935, 2500068

आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद, फोन : 2651264

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स
तालाब नवलराय, इलाहाबाद, फोन : 2558001

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 2460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

1. भविष्य के ईंधन : ई–पेट्रोल तथा ई–डीजल — 1
– प्रो0 हेमचन्द्र जोशी

2. मानव जीनोम : कुण्डली तैयार — 5
– प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

3. वन्य जीव संरक्षण क्यों — 7
– डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र

4. हृदय रोग और शाकाहार — 10
– डॉ0 जे.एल. अग्रवाल

5. अतीत की साक्षी : ड्रैगनफ्लाई — 13
– डॉ0 विनोद कुमार श्रीवास्तव

6. अभी तो कितने सार्स आने हैं — 16
– डॉ0 आर.सी. गुप्ता

7. पक्षियों के उड़ान की रोचक कहानी — 20
– डॉ0 दीपक कोहली

8. डॉ0 रघुनाथ अनंत मशेलकर — 23
– प्रो0 रामचरण मेहरोत्रा

9. बायोमास ऊर्जा का महत्व — 27
– इं0 राजनारायण पटैरिया

10. ताज महल और उसका संरक्षण — 30
– विनोद शंकर गुप्त

11. नाशीजीवों के जैविक नियंत्रण हेतु शत्रुओं के साथ साथ मित्र जीवों को भी पहचानें — 32
– सत्यव्रत द्विवेदी

12. गिद्ध के बाद अब गौरैया भी फुर्र — 36
– विजय चितारी

13. मृदा एवं जल संरक्षण की तकनीकें — 38
– डॉ0 उमा शंकर मिश्र

14. शहरीकरण : पर्यावरण प्रदूषण का कारण — 41
– डॉ0 डी.डी. ओझा

15. परिषद् का पृष्ठ — 44
– देवव्रत द्विवेदी

16. और अब ई–कचरे की समस्या — 46
– शिवेश कुमार

भविष्य के ईंधन : ई–पेट्रोल तथा ई–डीजल

प्रो. हेमचन्द्र जोशी

खनिज ईंधनों के निरंतर घटते भंडारों तथा उसके जलाने से बढ़ते प्रदूषण के फलस्वरूप विगत में विश्व के अनेक देशों में जैव ईंधनों का प्रयोग बढ़ने लगा है। जैव ईंधनों का प्रयोग जहाँ ईंधन की उपलब्धता, पर्यावरणीय प्रदूषक उत्सर्जनों में सुधार, आयातित ईंधनों पर निर्भरता में कमी तथा विकास प्रक्रिया में तेजी की अन्योन्य संभावना सँजोये है, वहीं इसके व्यावहारिक उपयोग में कृषि उत्पादों के लिए बाजार तथा ग्रामीण रोजगार के नये मार्गों के भी द्वार खुलेंगे।
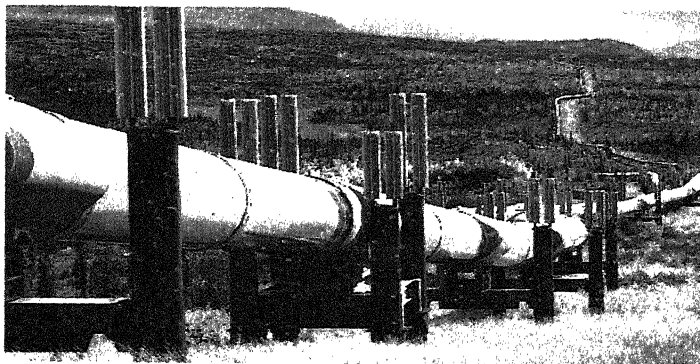
आज विश्व में जिन देशों ने अपनी ऊर्जा व्यवस्था में जैव ईंधन ईथेनॉल (ऐल्कोहल) को अपना लिया है वे प्रगति के मार्ग में सबसे आगे चल रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका इसका ज्वलंत उदाहरण है जहाँ वर्ष 1977 से ही पारम्परिक मोटर वाहन ईंधन पेट्रोल में ईथेनॉल का प्रयोग हो रहा है। वहाँ के कई राज्यों में, विशेषतः बड़े शहरों में पेट्रोल में 5 से 10 प्रतिशत ईथेनॉल मिलाना अनिवार्य है। इसी प्रकार यूरोपीय संघ के कई देशों में न केवल जैव डीजल तथा निम्न सल्फर डीजल का प्रयोग बढ़ाया गया है बल्कि अब डीजल में भी ईथेनॉल मिलाकर मोटर वाहनों को चलाने की परिकल्पना की जा रही है। ईथेनॉल मिश्रित पेट्रोल (गैसोहोल) की प्रारंभिक सफलता इस बात की द्योतक है कि आने वाले समय में, विशेषतः परिवहन क्षेत्र में, ई–पेट्रोल व ई–डीजल जैसे जैव ईंधनों का युग आने वाला है।

ऊर्जा के गैर–पारम्परिक क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य में मोटर वाहनों में ईथेनॉल के प्रयोग की परिकल्पना सर्वप्रथम अमेरिका में की गई थी। वर्ष 1908 में जब हेनरी फोर्ड ने अपना माडल टी–वाहन बनाया तो उसमें 25 प्रतिशत ईथेनाल प्रयोग करने की योजना बनायी थी। यही कारण था कि वर्ष 1920 से 1924 तक वहाँ की विख्यात तेल कम्पनी स्टैंडर्ड ऑयल ने बाल्टीमोर राज्य में 4 वर्ष तक 25 प्रतिशत ईथेनाल मिश्रित पेट्रोल वितरित किया था। परंतु मक्का के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि तथा संग्रहण एवम् परिवहन की सुचारु व्यवस्था के अभाव के कारण उसे अपनी परियोजना बंद करनी पड़ी। इसके बाद ईथेनाल को आगे बढ़ाने के प्रयास क्रमशः असफल होने लगे। लेकिन 1930 के प्रारंभ में एचिंसन कंसास में हेनरी फोर्ड के साथ अन्य विशेषज्ञों ने मिलकर प्रतिदिन 38000 लीटर ईंधन में प्रयुक्त ईथेनाल बनाने वाला एक किण्वन (फर्मेंटेशन) संयंत्र स्थापित किया। 1930 के दशक में वहाँ लगभग 2000 सर्विस स्टेशनों ने गैसोहोल के नाम से ईथेनाल

सर्विस स्टेशनों ने गैसोहोल के नाम से ईथेनाल मिश्रित पेट्रोल वितरित किया गया। लेकिन 1940 के दशक में दूसरे विश्व युद्ध के प्रारंभ होने के बाद खनिज तेलों के दामों में गिरावट के कारण ईथेनाल परियोजना को बन्द करना पड़ा।

वर्ष 1970 के प्रारंभ में खाड़ी युद्ध के कारण जब अचानक खनिज तेलों के मूल्य अप्रत्याशित रूप से बढ़ने लगे तो अमेरिका के ईथेनाल प्रोग्राम ने पुनः जोर पकड़ा तथा इस बार केवल अमेरिका ही नहीं, दक्षिण अमेरिका के गन्नाप्रधान देश ब्राजील ने भी अपनी चरमराती अर्थव्यवस्था के जीर्णोद्धार हेतु मोटरवाहन ईंधन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ईथेनाल जुटाने की मुहिम चलाई। चूँकि ब्राजील में गन्ना उत्पादन के लिए अनुकूल जलवायु है, वहाँ गन्ने से बिना चीनी बनाये उसके रस से सीधे ईथेनाल बनाने का मार्ग अपनाया गया जो अत्यधिक सफल हुआ है। अमेरिका का मक्के से तथा ब्राजील का गन्ने से बना ईथेनाल विश्व के लगभग 65 प्रतिशत ईथेनाल जैव ईंधन के रूप में प्रयोग आ रहा है। इससे प्रेरित होकर थाईलैंड, आस्ट्रेलिया तथा भारत जैसे कई गन्नाउत्पादक देश भी इस ओर अग्रसर हो रहे हैं। यूरोपीय संघ ने भी ईंधन के लिए ईथेनाल संयंत्र लगाने पर करों में राहत की घोषणा की है। वर्ष 2001 में वहाँ 2 प्रतिशत तक जैव ईंधनों का प्रयोग अनिवार्य किया गया था। वर्ष 2010 तक यह अनिवार्यता 5.75 प्रतिशत कर दी जायेगी।

जैव ईंधन के रूप में ऐल्कोहल (ईथेनाल) का प्रचलन जिस प्रकार से बढ़ रहा है, निश्चय ही वर्ष 2020 तक यह परिवहन के क्षेत्र में प्रमुख ईंधन बन जाएगा। लेकिन ऐल्कोहल के बढ़ते प्रयोग से क्या ईंधन की माँग का तथा इसके मोटरवाहनों में निरंतर प्रज्वलन से जनित प्रदूषण समस्याओं का पूर्णतया समाधान संभव हो सकेगा ? क्या ईथेनाल के पेट्रोल या डीजल में मिश्रण से वर्तमान इंजनों को बदलना पड़ेगा ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिसके प्रति हमारे मन में स्वतः जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

ऐल्कोहल-मिश्रित-ईंधन तथा पर्यावरण प्रदूषण

मोटर वाहनों में प्रयुक्त ईंधनों से प्रमुख समस्या उससे उत्सजिर्तत पदार्थों की है– जैसे कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, ऐसीटल्डीहाइड, सीसा इत्यादि। इनमें से कुछ गैसें न केवल स्वभाव से विषैली हैं, अपितु वातावरण में इनकी मात्रा बढ़ने से अम्लीय वर्षा, ग्रीन हाउस उष्मन तथा जलवायु परिवर्तन जैसी भूमंडलीय प्रक्रियाओं का भी प्रसार होता है। साधारण पेट्रोल से जहाँ गन्धक व नाइट्रोजन के आक्साइडों तथा कार्बन मोनोक्साइड का उत्सर्जन होता है वहीं उनमें मिश्रित टेट्राइइथाइल लेड से सीसे का उत्सर्जन होता है। सीसे के प्रदूषण की गम्भीर समस्या को देखते हुए धीरे धीरे सीसारहित पेट्रोल का प्रचलन बढ़ाया गया। परंतु सीसारहित पेट्रोल में आक्सीजनेट के रूप में अन्य रसायनों का प्रयोग प्रारंभ हुआ। इनमें से मिथाइल टरशरी ब्युटाइल ईथर (एम.टी.बी.ई.) नामक रसायन सर्वाधिक प्रचलित हुआ। आज आमतौर पर उपलब्ध सीसारहित पेट्रोल में आक्सीजनेट के रूप में एम.टी.बी.ई. मिलाया जाता है। लेकिन एम.टी.बी.ई. के लगातार प्रयोग से जहाँ अन्य गैसें व सीसे के उत्सर्जन में कमी आयी वहाँ एम.टी.बी.ई. रसायन के उज्सर्जन का नया प्रश्न खड़ा हो गया। एम.टी.बी.ई. जल में घुलनशील रसायन है। अतः पेट्रोल टैंकरों तथा पेट्रोल स्टेशनों से पेट्रोल रिसाव के साथ एम.टी.बी.ई. का भूमिगत जल की ओर रिसाव जल प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है। कहा जाता है कि एक चम्मच एम.टी.बी.ई. से एक ओलम्पिक तरण ताल पूरी तरह प्रदूषित हो जाता है। एम.टी.बी.ई. से पानी के स्वाद व गंध में एक तीखापन पैदा हो जाता है जिससे जल पीने योग्य नहीं रह जाता। अमेरिका की नगरीय जल संपूर्ति व्यवस्था में 27 प्रतिशत जल के नमूनों में एम.टी.बी.ई. की उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं। कैलीफोर्निया जैसे कई औद्योगिक शहरों में तो 40 प्रतिशत से अधिक नमूनों में एम.टी.बी.ई. पाया गया है। **इस प्रकार विषैले सीसे के स्थान पर प्रयुक्त एम.टी.बी.ई. स्वयं एक बड़ा पर्यावरण प्रदूषक सिद्ध हो चुका है।**

सारणी-1 : डीजल में ईथेनाल के मिश्रण से प्रदूषक पदार्थों के परिमाण में कमी

प्रदूषक	प्रदूषक पदार्थों के परिमाण में कमी का प्रतिशत	
	15 प्रतिशत ईथेनाल मिश्रित डीजल	10 प्रतिशत ईथेनाल मिश्रित डीजल
1. कणिक पदार्थ	41 प्रतिशत	27 प्रतिशत
2. नाइट्रोजन के आक्साइड	5 प्रतिशत	4 प्रतिशत
3. कार्बन मोनोक्साइड	27 प्रतिशत	20 प्रतिशत
4. हाइड्रोकार्बन	किण्वित	किण्वित

कैलीफोर्निया के एक अध्ययन के अनुसार इसे एक सक्षम कैंसरकारक रसायन माना गया है इसलिए इसे पर्यावरण से हटाने के लिए वहाँ युद्धस्तरीय प्रयास प्रारंभ किए गए हैं। पेट्रोल में एम.टी.बी.ई के स्थान पर 5 प्रतिशत ईथेनाल मिलाया जाना इन प्रयासों की ही एक कड़ी है।

ईथेनाल एम.टी.बी.ई. की तरह ही एक आक्सीजनेट है जो पेट्रोल की प्रज्वलन क्षमता को बढ़ाता है। ईथेनाल न केवल जैविक स्रोतों से प्राप्त हो सकता है, बल्कि उसमें आक्सीजन की मात्रा 35 प्रतिशत है जो एम.टी.बी.ई. से प्राप्त 18 प्रतिशत आक्सीजन की मात्रा से लगभग दुगुनी है जिस कारण ईथेनाल के पेट्रोल में मिश्रण से प्रज्वलन में विषैली कार्बन मोनोक्साइड के परिमाण में उल्लेखनीय कमी आती है। इस प्रकार ईथेनाल एम.टी.बी.ई. की अपेक्षा एक श्रेष्ठतर आक्सीजनेट है बल्कि उसके प्रयोग से कार्बन मोनोक्साइड तथा कणीय पदार्थों के उत्सर्जन में भी कमी के कारण शीत ऋतु में शहरों को ढक देने वाले कुहासे को भी कम करने में ईथेनाल सहायक हो सकता है। ईथेनाल के प्रयोग से वाहनों के उत्सर्जित कार्बन डाइआक्साइड के परिमाण में भी कमी आती है जो एक ग्रीन हाउस गैस है। यह भी पाया गया है कि ईथेनाल–मिश्रित–पेट्रोल के प्रयोग से भूसतही प्रदूषक ओजोन के परिमाण में भी कमी आती है। कुल मिलाकर ईथेनाल का पेट्रोल में मिश्रक के रूप में प्रयोग पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो चुका है। इस यथोचित विकल्प की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए ही अमेरिका की पर्यावरण संरक्षण संस्था (ईपीए) ने अमेरिका में पेट्रोल में एम.टी.बी.ई. के मिश्रण को चरणबद्ध रूप से हटाने की योजना बनाई है। इस प्रकार वर्ष 2005 तक वहाँ एम.टी.बी.ई. का प्रयोग पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जायेगा। भारत में मेट्रो शहरों को छोड़कर सारे देश में अभी भी सीसायुक्त पेट्रोल ही प्रचलन में है। अब सरकार ने सीधे 5 प्रतिशत ईथेनाल युक्त पेट्रोल को देश भर में लागू करने का सूत्रपात किया है। आशा की जाती है कि इसके क्रियान्वयन में अधिक समय नहीं लगेगा। यद्यपि यह भी मत है कि इससे वातावरण में ऐसीटेल्डीहाइड का उत्सर्जन बढ़ेगा जो वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन से क्रिया करके पराक्सी ऐसीटाइल नाइट्रेट (पी.ए.एन. पैन) बनाता है। पैन के ऐरोसोल से न केवल धुंध बढ़ती है बल्कि श्वसन के माध्यम से निरंतर इसका स्पर्श कैंसरकारक हो सकता है। लेकिन ये बातें केवल अनुमानजन्य हैं। प्रायोगिक स्तर पर इनकी पुष्टि नहीं हुई है।

ईथेनाल के मोटर वाहन ईंधन मिश्रक के संभावित प्रसार का एक बड़ा कारण यह भी है कि इसके डीजल में मिश्रण के परिणाम भी उत्साहवर्धक निकले हैं। जहाँ तक प्रदूषण का प्रश्न है डीजल इंजनों

देशों में, जहाँ परिवहन क्षेत्र में डीजल से चलने वाले वाहनों की ईंधन खपत पेट्रोल से चलने वाले वाहनों की खपत के दोगुने से भी अधिक है, डीजल में ईथेनाल का मिश्रण अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकता है। डीजल इंजनों द्वारा उत्सर्जित धुएँ में कणिक पदार्थ तथा अन्य हानिकारक यौगिक पाये जाते हैं जो वायु को प्रदूषित करते हैं। इसलिए इन प्रदूषकों को कम करने के लिए डीजल में आक्सीजनेट मिलाये जाते हैं। इनमें विशेषतः खतरनाक हैवी ड्यूटी डीजल इंजन होते हैं जिनसे पेट्रोल चालित इंजनों की अपेक्षा 100–200 गुना छोटे कण धुएँ से निकलते हैं। घनी आबादी वाले परिवहन क्षेत्रों में धुंध को अप्रत्याशित रूप से बढ़ाते हैं। ईथेनाल का आक्सीजनेट के रूप में डीजल में मिश्रण इन प्रदूषकों की मात्रा को कम कर सकता है। सारणी–1 में ईथेनाल के मिश्रण से प्रमुख प्रदूषकों के परिमाण में कमी को दर्शाया गया है।
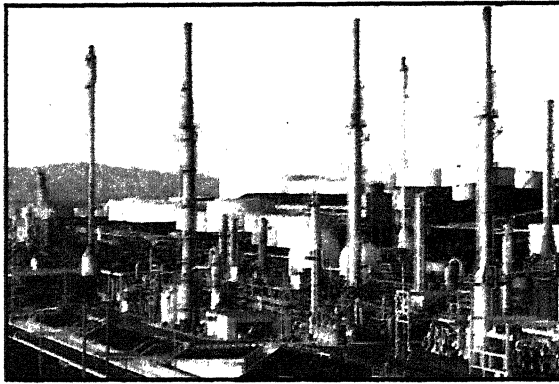
वर्तमान इंजनों में ई-ईंधन की व्यावहारिकता

वर्तमान इंजनों में, जो साधारण पेट्रोल या डीजल के लिए बने हैं, ईथेनाल–मिश्रित–पेट्रोल या डीजल पर चलाना कितना व्यावहारिक हो सकता है यह एक जटिल प्रश्न था। लेकिन अमेरिका एवं ब्राजील के अनुभवों से सिद्ध हो चुका है कि इन इंजनों में कोई फेरबदल किए बिना इन्हें ई–ईंधन द्वारा चलाया जा सकता है। अमेरिका में 5–15 प्रतिशत ईथेनाल–मिश्रित–पेट्रोल द्वारा इन वाहनों को बिना किसी क्षति के सुरक्षित चलाया गया है जबकि ब्राजील में 24 प्रतिशत ईथेनाल मिश्रित पेट्रोल से सामान्य वाहन सफलतापूर्वक चलाये जा रहे हैं। भारत में भी मिराज, मन्माद व बरेली के जिले के पिछले दो वर्षों से चल रहे प्रयोगों से यह निश्चित हो चुका है, 5 प्रतिशत मिश्रित पेट्रोल के प्रयोग से वाहनों की कुशलता पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा है। इन प्रयोगों की सफलता से प्रोत्साहित होकर, जहाँ सरकार ने नौ राज्यों में 5 प्रतिशत ईथेनाल–मिश्रित–पेट्रोल का प्रयोग अनिवार्य करने की पेशकश की है, वहीं भारतीय तेल निगम ने पेट्रोल में 10 प्रतिशत ईथेनाल मिश्रण की माँग को स्वीकार कर लिया है। भारतीय तेल निगम विगत में कई वर्षों से विभिन्न अनुपात में पेट्रोल में ईथेनाल के मिश्रण की वाहनों की कुशलता तथा उनसे उत्सर्जित प्रदूषक गैसों पर प्रयोग कर रहा है। इस प्रकार ईथेनाल–मिश्रित–पेट्रोल से चलने वाले सामान्य वाहनों की कुशलता व क्षमता के प्रति संदेह का कोई कारण नहीं रह गया है।

पिछले वर्ष नवम्बर में भारतीय औद्योगिक संगठन तथा गैर–पारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय, भारत सरकार के तत्वावधान में 'जैव ईंधन भारत के भविष्य निर्माता' विषय पर एक अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमें विश्व के अनेक विशेषज्ञों ने भावी वाहन ईंधन प्रयोग में ईथेनाल की व्यावहारिकता तथा इसके लिए ईथेनाल की उपलब्धता बढ़ाने के अनेक पहलुओं को स्पष्ट किया गया तथा औद्योगिक जगत को इस दिशा में नये प्रयोगों का आह्वान किया गया।

यद्यपि ई–पेट्रोल या गैसोहोल के प्रति भ्रांतियाँ खत्म हुई हैं परंतु ई–डीजल या ईथेनाल मिश्रित डीजल के प्रयोग की व्यावहारिकता पर यथोचित अनुसंधान आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं फिर भी यह संभव हुआ है कि डीजल में मिश्रक मिलाकर ई–डीजल को व्यावहारिक बनाया जा सकता है। अमेरिका में ऐसे प्रयोग सफल हुए हैं। वहाँ की 'प्योर एनर्जी कार्पोरेशन' नामक एक कम्पनी ने ऐसा मिश्रक बनाया है जिसको डीजल में मिलाने से 5–15 प्रतिशत ईथेनाल मिलाकर सामान्य

शेष पृष्ठ 20 पर

मानव जीनोम : कुण्डली तैयार

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पिछले 50 वर्षों की विज्ञान की प्रगति का यदि लेखाजोखा किया जाये तो आश्चर्य मिश्रित संतोष होता है। ऐसे तो विज्ञान के अनेक विषय हैं जिनमें महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल हुई हैं, किन्तु जीव विज्ञान में तो आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

वर्ष 2003 अनेक दृष्टियों से सारे संसार के लिए अच्छा नहीं रहा। उदाहरण के लिए ईराक–अमेरिका युद्ध की विनाशलीला का दुष्प्रभाव दूरगामी और सम्पूर्ण विश्व को दहलाने वाला है। दूसरी विश्वव्यापी घटना है चीन से चलकर सारे विश्व को अपनी गिरफ्त में लेते हुए जानलेवा विषाणु कोर्ना और तज्जनित घातक बीमारी जिसे सार्स 'सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिन्ड्रोम' का नाम दिया गया है। पहली युद्ध वाली दुर्घटना पर तो वैज्ञानिकों का वश नहीं है। युद्ध की विभीषिका पर नियंत्रण राजनेताओं के हाथों में है, किन्तु दूसरी घटना विज्ञान या जीव विज्ञान के दायरे में आती है। वैज्ञानिकों ने इस विषाणु के जीनोम (कुण्डली) को पढ़ लिया है और आशा है कि जल्दी ही कोई वैक्सीन खोज लिया जावेगा। वर्ष 2003 को जीव विज्ञान की सर्वोत्कृष्ट खोज 'ह्यूमन जीनोम' के पूरी तरह से पढ़ लिए जाने के कारण सदैव सुखद घटना के रूप में याद किया जायेगा।

आज से पाँच दशक पूर्व 25 अप्रैल 1953 को जेम्स डी. वाटसन और फ्रांसिस क्रिक का संयुक्त रूप से विश्वविख्यात विज्ञान की शोधपत्रिका 'नेचर' में एक शोधपत्र प्रकाशित हुआ जिसके माध्यम से डी.एन.ए. अर्थात् डीआक्सीराइबोज़ न्यूक्लिक एसिड की रासायनिक संरचना का माडल प्रस्तुत किया गया। यह खोज युगांतरकारी सिद्ध हुई।

25 वर्ष पूर्व सर्वप्रथम परखनली शिशु का जन्म हुआ और वर्ष 2003 में मानव की पूरी कुण्डली ही पढ़ ली गई। 'ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट' या मानव जीनोम परियोजना का प्रारंभ 1990 में हुआ। इस परियोजना को पूरा करने के लिए वर्ष 2005 तक का समय निर्धारित किया गया था, किन्तु वैज्ञानिकों ने यह परियोजना दो वर्ष पहले ही सफलतापूर्वक पूरी कर ली। **यह जीव विज्ञान की अब तक की सर्वोत्तम उपलब्धि है।**
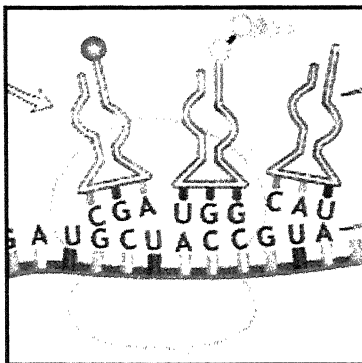
मानव जीनोम के मानचित्र का मूल्यांकन लगभग 800 मिलियन डॉलर है। इसमें प्रमुख भूमिका अमेरिका और ब्रिटेन के वैज्ञानिकों की रही है जिसे फ्रांसिस कॉलिन्स ने नेतृत्व प्रदान किया। वैसे इस परियोजना में विश्व के अनेक देशों की भागीदारी रही। भारत भी इसका एक अंग था और जो काम भारतीय वैज्ञानिकों को सौंपा गया था उसे उन्होंने समय से पहले ही 2002 के अंत तक पूरा कर लिया था।

मानव जीनोम के तीन मानचित्र तैयार किए गए हैं और तीसरा मानचित्र अंतिम है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अब जीनोम मानचित्रण किया ही

नहीं जायेगा। अभी तो अनेक जीव जातियाँ हैं जिनके जीनोमों के मानचित्रण करने हैं। और तो और, अभी मानव जीनोम में जो विचलन या विभिन्नताएँ हैं उनका अध्ययन बृहत आँकड़ों का विश्लेषण, उनकी उपादेयता या अनुप्रयोग आदि को व्यवस्थित करने का कार्य शेष है।

जीव विज्ञान के क्षेत्र में वाटसन और क्रिक की हैरतअंगेज गतिशील खोज ने जीव विज्ञान के अंतर्गत अनेक नए विषयों को सृजित किया है। आज इन विषयों में इतनी अधिक प्रगति हो चुकी है जिसके परिणामस्वरूप इन विषयों को नए विज्ञानों के नाम दिए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए आनुवंशिकी, जैव प्रौद्योगिकी, जैव सूचना प्रौद्योगिकी, रसायन सूचना प्रौद्योगिकी, प्रोटियोमिक्स, फार्मेकोजीनोमिक्स आदि।

मानव शरीर की जटिल क्रियाओं को शीघ्रातिशीघ्र समझने में मानव जीनोम मानचित्र आशुपरिकलक या अनुगणक की भूमिका का निर्वहन करेगा। मानव शरीर के 35,000 जीन, जिनके मानचित्र बना लिए गए हैं, उनसे निश्चित रूप से मानव शरीर को ग्रसित करने वाले रोगों के इतिहास और स्वभाव का पता लगाना संभव हो सकेगा। कौन से कारक हमें रोगी बनाते हैं और हमारे अच्छे स्वास्थ्य का क्या रहस्य है, यह ज्ञात किया जा सकेगा। इन सूचनाओं के आधार पर जीन चिकित्सक उचित चिकित्सा करने में सक्षम हो जायेंगे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि 3.1 बिलियन क्षारक या डी.एन.ए. अक्षर जो मानव में आनुवंशिकता के लिए उत्तरदायी हैं, उन्हें विश्लेषित करना संभव होगा। फिर तो 'जीवन की भाषा' (लैंग्वेज आफ लाइफ) को एक ऐसे यंत्र या हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगेगा जिसकी सहायता से अभिकल्प दवाओं को निर्मित करना सुलभ हो जायेगा। विशेष रूप से उन औषधियों को जो आनुवंशिक रोगों (माता पिता से मिलने वाले जन्मजात रोग) में विशेष रूप से प्रभावी होंगी। जी हाँ, यह विज्ञान गल्प या कोरी कल्पना नहीं, वरन् वास्तविकता है। और इसका प्रमाण है कनाडा के वैज्ञानिकों द्वारा सार्स विषाणु के जीनोम को क्रमबद्ध करके उसका मानचित्र बना लेना। आशा है निकट भविष्य में इस घातक निमोनिया विषाणु का इलाज ढूँढ लिया जायेगा। वैसे इस बात में भी सच्चाई है कि जहाँ एक ओर तो हम किसी रोग की दवा तैयार करेंगे वहीं रोगकारक जीवाणु या विषाणु जैसे किसी रोगकारक सूक्ष्मजीव का जीन के उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) द्वारा जन्म भी हो जायेगा। फिर तो रोगाणु और जीन चिकित्सा से रोगों पर विजय प्राप्त करने के अभियान किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला की बजाय हमारे प्रतिदिन के जीवन में चला करेंगे।

निःसंदेह आनुवंशिक रोगों पर विजय प्राप्त करने की दिशा में मानव जीनोम का मानचित्रण भविष्य की ओर एक लम्बी छलाँग है, किन्तु यह तभी प्रभावी सिद्ध होगा जब रोगों की रोकथाम और हमारी जीवन शैली में तालमेल हो और वे साथ साथ चलें।

मानव जीनोम के मानचित्रण से जो एक और तथ्य उभर कर सामने आया है, वह यह कि अब तक बहुत जीनों को 'जंक जीन' या बेकार, किसी काम न आने वाले जीनों की संज्ञा दी गई थी, वह धारणा गलत सिद्ध हो गयी है। आनुवंशिकी के विद्वानों का ऐसा मानना है कि कोई भी जीन बेकार या जंक नहीं होता। उसका कोई न कोई उपयोग अवश्य होता है।

इस प्रकार अब यह ज्ञात करना संभव हो गया है कि मानव शरीर में कब किसी रोग की संभावना है और इस प्रकार माता–पिता से प्राप्त रोगकारक जीन को स्वस्थ जीन से परिवर्तित करके रोग की संभावना को दूर किया जा सकता है। वैसे अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है और आने वाला समय ही बतायेगा कि आनुवंशिक रोगों तथा थैलासीमिया जैसे रोगों से हमें कब तक मुक्ति मिल सकेगी। फिर भी जीव विज्ञान के क्षेत्र में अब तक प्राप्त सफलताओं और उपलब्धियों के आधार पर तो यह कहा जा सकता है कि मानव एक सर्वथा नवीन सुनहरे भविष्य की ओर अग्रसर है।

अनुकम्पा
वाई–II सी, 115/6
त्रिवेणीपुरम्, झूँसी, इलाहाबाद

वन्य जीव संरक्षण क्यों ?

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। उसमें सोचने समझने तथा तर्क करने की शक्ति है। ऐसा इसलिए क्योंकि उसे मस्तिष्क रूपी एक अनमोल धरोहर मिली है। मानव विकास के साथ उसका मस्तिष्क बढ़ता और उत्तरोत्तर प्रखर होता गया है। देखा जाय तो धरती पर मानव का आगमन ही पूरे ब्रह्माण्ड की एक अद्भुत और विरल घटना है। इंसान ने अपने जीवन को खुशहाल बनाने के लिए अपनी मेधा का इस्तेमाल किया है। आज की संपूर्ण उन्नति के पीछे मानव मस्तिष्क की भूमिका है। इंसान ने प्रकृति के संसाधनों का अपने हित में प्रयोग किया हैं वह प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाना चाहता है।

यही वह चीज है जो उसे बाकी प्राणियों से अलग करती है। अपने उदरपूर्ति के साथ कपड़ा, आवास और चिकित्सा के लिए प्राकृतिक संपदा का इस्तेमाल वह आदिकाल से करता आ रहा है। चूँकि प्राचीन काल में आबादी कम थी इसलिए जरूरतें सीमित थीं किन्तु समय के साथ बढ़ती जनसंख्या तथा जरूरतों से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता गया है। संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के चलते आज स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गयी है। संसाधनों के दोहन से स्पष्ट है कि वन्य प्राणी भी प्रभावित हुए हैं। इंसान की बस्तियों को बसाने के लिए जंगलों की कटाई होती रही। चूँकि पहले इंसान की जनसंख्या कम थी अतः प्राकृतिक संतुलन अप्रभावित रहा। इस उदाहरण से समझ सकते हैं कि आज से दो हजार साल पहले इस धरती पर लगभग 30 करोड़ इंसान रहते थे। आज जनसंख्या 6 अरब के आँकड़े को कभी की पार कर चुकी है। भौतिक विकास, कृषि एवं बढ़ते औद्योगीकरण के चलते संसाधनों पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है इसलिए आज प्राकृतिक संतुलन चरमरा गया है। वन तेजी से कटते जा रहे हैं, वन्यजीवों की स्वाभाविक शरणस्थली सिमटती जा रही है, स्वार्थ और लोभ के चलते वन्यजीवों का शिकार भी जारी है। अब तक अनेक प्रजातियाँ सदा के लिए लुप्त हो चुकी हैं तथा अनेक ऐसी भी हैं जो विलुप्त होने के कगार पर हैं। ऐसे में यह राष्ट्रीय दायित्व है कि हम उनकी रक्षा करें और उन्हें उचित संरक्षण प्रदान करें।

प्रकृति संरक्षण का विचार प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति का अंग रहा है। सनातन संस्कृति में मानव ही नहीं अपितु मानवेतर प्राणियों के प्रति भी दया और करुणा की बात कही गयी है। सिंधुघाटी की सभ्यता के समय भी वन्यजीवों का तत्कालीन समाज में स्थान था। उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं, मूर्तियों इत्यादि में हाथी, गैंडा, बैल व अन्य कई पशुओं की आकृतियाँ मिलती हैं। भारत में सर्वप्रथम सम्राट अशोक ने ईसा से तीसरी सदी पूर्व प्रकृति संरक्षण के प्रयास किए थे। अशोक के शासनकाल में वन्य जीवों के शिकार पर प्रतिबंध था। इन बातों का उल्लेख तत्कालीन शिलालेखों में मिलता है। सम्राट अशोक की अहिंसा मानव तक ही सीमित नहीं थी अपितु यह मानवेतर प्राणियों के लिए भी थी। इंसान के साथ अन्य जीवों के सह–अस्तित्व का यह उदाहरण दुनिया की किसी भी संस्कृति में दुर्लभ है। बाद में बाबर और जहाँगीर के शासनकाल में भी वन्य जीवों को उचित संरक्षण मिला था। इन बातों का जिक्र 'बाबरनामा' पुस्तक में मिलता है। प्राचीन

भारतीय कला में वन्य जीव संरक्षण का विचार जीवंत रूप में मिलता है। महान नीतिज्ञ चाणक्य की रचना 'अर्थशास्त्र' में भी प्रकृति एवं उसकी संपदा को अक्षुण्ण रखने का संदेश दिया गया है। 'पंचतंत्र' एवं 'जातक कथाओं' में वन्य जीवों से संबंधित तमाम कहानियाँ देखी जा सकती हैं। हमारे साधु–संतों एवं ऋषियों तथा मुनियों ने वन्य जीवों के प्रति अहिंसा का भाव रखने का उपदेश दिया है। वेदों–पुराणों तथा उपनिषदों में वन्य जीवन का बारम्बार उल्लेख मिलता है। इसे विडंबना ही कहा जाना चाहिए कि जिस देश में वन्य जीवों के प्रति इतनी सद्भावना एवं इतना समादर रहा हो, आज वहीं पर वन्य जीवों का इतनी तेजी से पतन हो रहा है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत वैविध्यपूर्ण है। इसलिए यहाँ वन्य जीवों की अनेक प्रजातियाँ मिलती हैं। पूरे भूमण्डल के 12 मुख्य जैव–विविधता से संपन्न क्षेत्रों में भारत एक है। जहाँ एक ओर हिमाच्छादित हिमालय है तो दूसरी ओर भीषण गरमी से तपता थार का रेगिस्तान। एक ओर गंगा–यमुना का मैदानी इलाका तो दूसरी ओर दक्षिण का पठार। संसार में मिलने वाली ढाई लाख वनस्पतियों में से 15 हजार अकेले हमारे देश में मिलती हैं। लेकिन खेद है कि बढ़ती कृषि जरूरतों, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण वन्यसंपदा पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं। आज वन्य जीव उजड़ते जा रहे हैं। उनकी शरणस्थली दिनोंदित सिमटती जा रही है। चोरी छिपे उनका शिकार हो रहा है। विश्व वन्य जीव कोष की रिपोर्ट के अनुसार अन्य देशों की तुलना में भारत में वन्य जीवों का शिकार सर्वाधिक गति से हो रहा है। प्रकृति के संरक्षण के लिए कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय संस्था इंटरनेशनल यूनियन फार दि कंजरवेशन आफ नेचर 'रेड डाटा' नामक पुस्तक में संकटापन्न 400 पक्षियों, 305 स्तनधारियों, 193 मछलियों और 138 उभयचर जीवों की सूची दी है जिन्हें तुरंत संरक्षण प्रदान किए जाने की जरूरत है।

भारत सरकार ने वर्ष 1952 में वन्य जीव संरक्षण हेतु 'भारतीय वन्य जीव बोर्ड' का गठन किया। इसकी स्थापना के प्रयासों के पीछे कुछ निजी संस्थाओं की भूमिका थी जिसमें 'बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी' प्रमुख है। वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम, 1972 के अनुसार जिन जीवों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था उनके शिकार तथा उनके अंगों के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। सन् 1976 से सरकार ने साँप सहित कई जानवरों की खालों पर व्यापक प्रतिबंध लगा रखा है लेकिन जैसा कि हम जानते हैं कि सिर्फ कानून बन जाना ही सब कुछ नहीं होता। आए दिन दुर्लभ प्राणियों की खालों के तस्करी में लगे लोग पकड़े जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि चोरी छिपे इन प्राणियों का शिकार बदस्तूर जारी है। वन्य जीवों को सुरक्षा तथा संरक्षण देने के लिए सरकार ने पूरे देश में 752 राष्ट्रीय उद्यान, 421 वन्य जीव अभयारण्य, 21 प्रोजेक्ट टाइगर एरिया तथा 8 बायोस्फीयर रिजर्व की स्थापना की है। इनका क्षेत्रफल देश के कुल क्षेत्रफल का 4 प्रतिशत है। इतने बड़े तंत्र में कर्मचारियों की एक बड़ी फौज लगी हुई है किन्तु विडंबना यह है कि बावजूद इसके वन्य जीव असुरक्षित हैं। इसका एक प्रमुख कारण है कि सरकारी प्रयास को स्थानीय लोगों का सहयोग नहीं मिल पाता। प्रायोगिक तौर पर ऐसा पाया गया है कि जब स्थानीय लोगों को परियोजना से जोड़ा गया तो कहीं ज्यादा कारगर संरक्षण प्रदान किया जा सका। अगर परियोजना स्थल के इर्द–गिर्द के लोग अलग अलग, उपेक्षित और पीड़ित होंगे तो स्पष्ट है कि वे सहयोग नहीं करेंगे। कुछ वर्ष पहले देश के कार्बेट नेशनल पार्क तथा दुधवा नेशनल पार्क में ग्रामीणों द्वारा कई बाघों को जहर देकर मार डालने की घटना प्रकाश में आयी थी। अधिकारियों का कहना है कि पार्क में बाघों की संख्या क्षमता से ज्यादा

हो गयी है जिससे ये पार्क की सीमा से बाहर किसानों के खेतों की ओर चले जाते हैं। जब गाँव वाले या इनके मवेशी इन बाघों के शिकार बनते हैं तो ग्रामीणों में आक्रोश उपजना स्वाभाविक है। इसी प्रतिशोध में ग्रामीणों द्वारा इन बाघों को जहर दे देने की घटनाएँ प्रकाश में आती हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि आरक्षित इलाके में मानव गतिविधियों के कारण भी वन्य जीव प्रायः पार्क के बाहर चले जाते हैं। इसलिए जरूसी है कि जन समुदाय में यह भाव जगे कि ये वन्य जीव उनकी संपदा हैं तथा उनका संरक्षण उनकी जिम्मेदारी है। जहाँ लोगों में यह भाव है वहाँ संरक्षण स्वतः होता है। इसकी एक मिसाल है राजस्थान का बिश्नोई समाज जहाँ लोगों ने वन्यजीवों के संरक्षण की दिशा में अनुकरणीय कार्य किया है। ये लोग वन्यजीवों के शिकार के प्रबल विरोधी हैं।

सरकार की वन रिपोर्ट 1993 के अनुसार हमारे देश में वन संपदा की स्थिति चिंतनीय है। उपग्रह से प्राप्त चित्र के अनुसार देश के कुल क्षेत्रफल का 19.5 प्रतिशत भाग ही वनस्पतियों से ढका है जिसका लगभग 12 प्रतिशत भाग ही वास्तविक रूप से ढका है। हमारी वननीति 1988 के अनुसार कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के एक–तिहाई में वन होने चाहिए। देश के कुल 413 जिलों में से 105 में 33 प्रतिशत, 52 जिलों में 25 प्रतिशत तथा शेष 217 जिलों में 19 प्रतिशत से कम वन हैं। वनों के लगातार हो रहे ह्रास से वन्यजीवों पर भी दुष्प्रभाव पड़ा है। दुनिया के कुल 15 लाख पशु–पक्षियों में 75 हजार भारतीय मूल के हैं। जब जब हमें इनके संरक्षण की सुधि आयी है तब तक 66 स्तनधारी, 38 पक्षी एवं उभयचरों की 18 प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी हैं। एकमात्र भारत में मिलने वाला शिकारी चीता सदा के लिए लुप्त हो चुका है। बंगाल का शाही चीता, जिसकी अनुमानित संख्या कभी 40000 थी, अब घटकर 2000 रह गयी है। एशियाई शेर सिफ गुजरात के गिर के जंगलों में पाया जाता है। हिरन की कई प्रजातियाँ संकट में हैं। कस्तूरी मृग इसका ज्वलंत उदाहरण है। जानवरों के शिकार के पीछे उनके अंगों की उपयोगिता उत्तरदायी है इसलिए उनकी तस्करी तक होती है। बाघ की खाल तथा हड्डियों की विदेशों में बड़ी माँग है। पूर्वी एशियाई देशों में दवा बनाने में इनका प्रयोग होता है। अतः चोरी–छिपे इनका शिकार होता है। हाथी के दाँत का प्रयोग सजावटी सामान बनाने में होता है अतः हाथी भी शिकार की चपेट में हैं।

प्राकृतिक आपदा तथा महामारी से भी जंगली जीवों को बचाने की जरूरत है। पिछले कुछ वर्ष पूर्व तेज बरसात से आसाम में आयी बाढ़ से वहाँ का काजीरंगा पार्क पूरी तरह से पानी में डूब गया तो वन्य जीव जान बचाने के लिए इधर उधर भाग गए। इसमें काफी जानवर बह गए। कितने हाथी तथा गैंडे इस बाढ़ के कारण मारे गए। 1980 ई0 में भी इसी तरह की बाढ़ आयी थी जिसमें लगभग एक सौ गैंडे मारे गए थे। ध्यान रहे कि एक सींग वाले ये गैंडे केवल हिन्दुस्तान में ही मिलते हैं।

आज जरूरत इस बात की है कि सामान्य जनता में वन्य जीवों के प्रति जागरूकता पैदा की जाय क्योंकि सरकारी प्रयास ही काफी नहीं हैं। जब तक आम लोगों में अपनी धरोहर की महत्ता तथा उपयोगिता की समझ नहीं होगी तक तक संरक्षण में पूरी सफलता मिल पाना असम्भव है। पिछले कई दशकों में हमने बाघ, गैंडे, मृग, मगरमच्छ सहित अनेक प्रजातियों को संरक्षण देकर उनकी वंशबेलि एवं संख्या निःसंदेह बढ़ायी है। हमें अपने प्रयासों में काफी सफलता मिली है। वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु चेतना पैदा करने में फिल्मों, प्रदर्शनियों तथा मेलों की भूमिका हो सकती है। पाठ्यक्रम के स्तर पर सामग्री का समावेश किया जा सकता है जिससे शुरू में वन्य जीवों के प्रति जागरूकता पैदा हो। हम सभी नागरिकों का यह कर्त्तव्य है कि हम वन्य जीवों की सुरक्षा, उनके संरक्षण एवं संवर्धन में अपना योगदान दें।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभत अनुसंधान संस्थान
वी.एन. पुरव मार्ग
मुंबई-400088

हृदय रोग और शाकाहार

डॉ. जे.एल. अग्रवाल

हृदयधमनी रोगों (एन्जाइना, हार्ट अटैक), उच्च रक्तचाप ग्रसित मरीजों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है। इन रोगों का घनिष्ठ संबंध खान पान, जीवन शैली से है। मोटे व्यक्तियों में इन रोगों की आशंका ज्यादा होती है। यदि रक्त में कोलेस्ट्रेरोल, एल.डी.एल. ट्राईग्लिसराइड वसा का स्तर ज्यादा है, सिगरेट, तम्बाकू, गुटखा का सेवन किया जाता है, आरामपरस्त, तनाव ग्रस्त, चिंताग्रस्त जीवन व्यतीत किया जाता है, व्यायाम नहीं किया जाता तो इन रोगों से ग्रस्त होने का खतरा बढ़ जाता है। मोटापे, रक्त कोलेस्टेराल, एवं अन्य वसा स्तर का सीधा सम्बन्ध भोजन और जीवन शैली से है। यदि इन तत्वों पर नियंत्रण कर लिया जाये तो हृदय धमनी, उच्च रक्तचाप से बचाव, या इनकी गंभीरता पर अंकुश रखना संभव है।

कोलेस्टेराल और हृदयधमनी रोग और उच्च रक्तचाप

यह अकाट्य सत्य है कि बढ़े हुए रक्त कोलेस्टेरोल स्तर का सीधा सम्बन्ध हृदय रोगों से है। शोधों से ज्ञात हुआ है कि यदि रक्त कोलेस्टेरोल का स्तर 150 मिग्रा0 प्रति 100 मिली तक होता है तो हार्ट अटैक, एन्जाइना होने की संभावना नहीं के बराबर रहती है। पर जब कोलेस्टेरोल का स्तर 150 मिग्रा0 से ज्यादा हो जाता है तो इनका खतरा कई गुना बढ़ जाता है। कोलेस्टेरोल धमनियों की अन्दरूनी सतह पर जमा होकर उनको सँकरी और असमतल कर देता है। इनकी दीवार सख्त और खुरदरी हो जाती है। यह दशा एथ्रीयोस्कोलोरोसिस कहलाती है। इन धमनियों से रक्त प्रवाह कम हो जाता है, थक्का बनने की संभावना रहती है जिनके कारण एन्जाइना का दर्द या हार्ट अटैक (एम.आई.) हो सकता है। एथ्रीयोस्कोलोरोसिस के परिणामस्वरूप उच्च रक्तचाप ग्रस्त होने का खतरा भी ज्यादा हो जाता है। यदि रक्त कोलेस्टेराल पर नियंत्रण कर लिया जाता है तो कारोनरी धमनी रोग (एन्जाइना, हार्ट अटैक) और उच्च रक्तचाप की संभावना बहुत कम हो जाती है।

कोलेस्टराल सिर्फ जानवरों से प्राप्त खाद्य पदार्थों जैसे दूध, दुग्ध उत्पादन (क्रीम, दही, पनीर, चीज, खोया, आइसक्रीम, मलाई) अंडे की जर्दी, गोश्त, चिकन, चर्बी इत्यादि में पाया जाता है। कोलेस्टराल शाकाहारी भोज्य पदार्थों में मौजूद नहीं होता। कुछ मात्रा में कोलेस्टराल का निर्माण शरीर में हो जाता है। भोजन के माध्यम से शरीर को सिर्फ 200—300 मिग्रा0 कोलेस्टराल ही प्रतिदिन आवश्यकता होती है जबकि एक अंडे की जर्दी में ही 200 मिग्रा0 से ज्यादा कोलेस्टेराल मौजूद होता है। रक्त कोलेस्टेराल स्तर
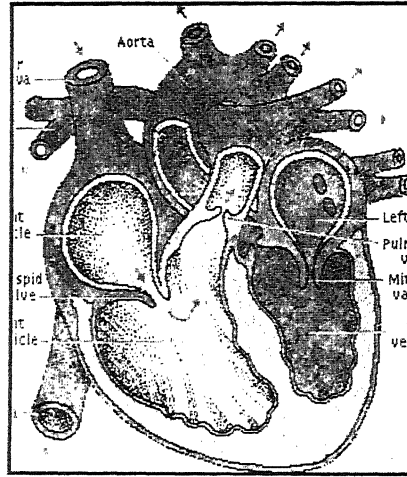
नियंत्रित रखने के लिए बेहतर होगा कि शाकाहारी भोजन ही करें। कोलेस्टराल की जरूरत भर आपूर्ति दूध और दुग्ध उत्पादनों द्वारा हो ही जाती है। यदि मांसाहारी हैं तो सप्ताह में उसे 4 अंडे से ज्यादा का सेवन नहीं करना चाहिए या फिर जर्दी हटा कर करें। गोश्त चिकन की मात्रा 150 ग्राम प्रतिदिन से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

शाकाहारी व्यक्ति यदि स्कीम्ड दूध और इसी से बनाये दुग्ध पदार्थों का सेवन भी करते हैं तो उनमें कालेस्टेराल स्तर बढ़ने की संभावना नहीं होती और हृदय रोगों का खतरा कम हो जाता है।

वसा और हृदय रोग

वसा का घनिष्ठ सम्बंध हृदय धमनी रोग और उच्च रक्तचाप तथा मोटापे से है। वसा से अन्य भोज्य पदार्थों, शर्करा, प्रोटीन से दुगनी से ज्यादा कैलोरी प्राप्त होती है। जरूरत से ज्यादा सेवन करने से वजन बढ़ने, मोटापा होने की संभावना रहती है। वसा के सेवन से एथ्रीयोस्कोलोरोसिस होने का खतरा भी बढ़ जाता है। अतः भोजन में वसा की मात्रा सीमित होनी चाहिए। ज्यादातर शाकाहारी भोज्य पदार्थो में प्राकृतिक रूप से (सूखे मेवों, मूँगफली, तेलों के बीज को छोड़) माँसाहारी भोज्य पदार्थों से कम होती है।

वसा के स्वरूप का भी हृदय रोगों से अभिन्न संबंध होता है। ज्यादा मात्रा में संतृप्त वसा के सेवन से हृदय रोगों का खतरा बढ़ जाता है। यह वसा मुख्यतः माँसाहारी भोज्य पदार्थो, गोश्त, चिकन, दूध, अंडे, देशी घी (मछली को छोड़कर) आदि में ज्यादा मात्रा में पाये जाते है। जबकि नारियल और पॉम तेलों को छोड़ कर अन्य वनस्पति तेलों में असंतृप्त (मोनो तथा पाली असंतृप्त) वसा संतुलित मात्रा में मौजूद होते हैं जिनके सीमित मात्रा में सेवन से हृदय रोगों की आशंका कम रहती है। वनस्पति घी में भी संतृप्त वसा तथा हानिकारक ह्रास संतृप्त वसा मौजूद होते हैं।

हर व्यक्ति को यथा संभव जानवरों से प्राप्त वसा चर्बी, बटर, देशी घी, मक्खन का सेवन नहीं करना चाहिए। भोजन को सीमित मात्रा में वनस्पति तेलों में पकाना चाहिए। वनस्पति घी का सेवन भी नहीं करना चाहिए।

डायटिरी फाइबर और हृदय रोग

डायटिरी फाइबर या रेशे हालाँकि मानव की आँतों द्वारा अवशोषित नहीं होते, पर आँतों में ये शरीर के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके पर्याप्त मात्रा के सेवन से कब्ज नहीं होता, आँतों के कैंसर से बचाव होता है। साथ ही यह रक्त में कोलेस्टेराल ग्लूकोज के स्तर को नियंत्रित कर एथ्रीयोस्कोलोरोसिस और मधुमेह रोगों से बचाव करते हैं। यह रेशे सिर्फ शाकाहारी भोज्य पदार्थों में मौजूद होते हैं जबकि जानवरों से प्राप्त किसी भी भोज्य पदार्थ में रेशे मौजूद नहीं होते हैं। वयस्क व्यक्ति में करीब 30–40 ग्राम रेशे मौजूद रहना जरूरी होता है। अतः संतुलित स्वास्थ्यवर्धक भोजन में शाकाहारी भोज्य पदार्थ, सब्जियाँ, फलों, साबुत दालें, मोटे अनाज का होना जरूरी है। यदि भोजन में रेशे पर्याप्त मात्रा में नहीं होते तो हृदय धमनी रोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, आँतों के कैंसर, कब्ज इत्यादि का खतरा बढ़ जाता है। अतः

डायटिरी फाइबर युक्त शाकाहारी भोज्य पदार्थों का सेवन आवश्यक होता है।

एण्टी ऑक्सीडेंट और हृदय रोग

शरीर में अनेक हानिकारक मुक्तमूलक जैसे सुपरआक्साइड (O_2^-), हाइड्रोजन परआक्साइड (H_2O_2), हाइड्राक्सिल (OH^-) इत्यादि बनते रहते हैं। सामान्यतः शरीर में मौजूद विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा यह मूलक निष्क्रिय कर दिये जाते हैं। यदि यह मुक्तमूलक ज्यादा मात्रा में निर्मित होने लगते हैं या इनको निष्क्रिय करने वाली प्रक्रियायें निष्प्रभावी हो जाती हैं तो इनका स्तर शरीर में बढ़ जाता है, और इनके शरीर पर अनेक गंभीर, घातक दुष्प्रभाव होते हैं। हृदयधमनी रोग भी मुक्तमूलक की अधिकता के कारण हो सकते हैं। इन मुक्तमूलक को निष्क्रिय करने वाले अनेक तत्व होते हैं जिनको एण्टीआक्सीडेन्ट कहा जाता है जैसे कि विटामिन बीटा कैरोटिन, सी, ई, डी, खनिज लवण, सिलेनियम, कॉपर एवं अनेक अन्य पर्याप्त मात्रा में अंकुरित अनाजों, दालों, फलों, सब्जियों में मौजूद होते हैं। अतः इन भोज्य पदार्थों का प्रचुर मात्रा में सेवन करने से हृदयधमनी रोगों, उच्च रक्तचाप एवं अनेक अन्य गंभीर घातक रोगों से बचाव होता है, शरीर सक्रिय बना रहता है, वृद्धावस्था के परिवर्तन देर से और धीमी गति से होते हैं।

नमक और उच्च रक्तचाप

सोडियम (नमक) का उच्च रक्तचाप से संबंध सर्वविदित है। शोधों से ज्ञात हुआ है कि शाकाहारियों में उच्च रक्तचाप की संभावना माँसाहारियों की अपेक्षा कम होती है बशर्ते कि दोनों व्यक्ति एक ही तरह के वातावरण में रहते हों। विज्ञान का मत है कि शाकाहारी भोज्य पदार्थों में पोटैशियम की मात्रा माँसाहारियों खाद्य पदार्थों की अपेक्षा ज्यादा होती है जो कि उच्च रक्तचाप से बचाव प्रदान करता है। माँसाहारी खाद्य पदार्थों में सामान्यतः सोडियम की मात्रा ज्यादा होती है।

स्वास्थ्यवर्धक, संतुलित भोजन में व्यक्ति के वजन, कार्यशैली के अनुसार पर्याप्त कैलोरी होनी चाहिए। इन कैलोरी में वसा द्वारा प्रदत्त कैलोरी का योगदान 20से 25 प्रतिशत होना चाहिए। वसा भी करीब करीब बराबर मात्रा में संतृप्त, मोनोअसंतृप्त, पालीअसंतृप्त (प्यूफा) मौजूद होना चाहिए, थोड़ी मात्रा में ओमेगा–6 फैटी एसिड भी मौजूद होना चाहिए। प्रतिदिन भोजन में कोलेस्टेराल की मात्रा 300 मिग्रा0 से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। संतुलित भोजन में करीब 40 ग्राम डायटिरी फाइबर तथा पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवणों का मौजूद होना भी आवयश्क होता है। भोजन में प्रचुर मात्रा में एंटीआक्सीडेंट तत्व भी होना चाहिए। सिगरेट, तम्बाकू, गुटखा का तथा अत्यधिक मात्रा में शराब का सेवन नहीं करना चाहिए, और तनावमुक्त, चिंतारहित जीवन व्यतीत करें। आदर्श रूप से हर व्यक्ति को रक्त कोलेस्टेराल और वसा के विभिन्न अवयवों की नियमित अन्तराल पर माप करवाना चाहिए और प्रयास कर कोलेस्टराल का स्तर 200 मिग्रा0 ट्राईग्लिसराइड का 100 मिग्रा0, एल.डी.एल. का स्तर 150 मिग्रा0 प्रति 100 मिली0 से कम और एच.डी.एल. का स्तर 350 मिग्रा0 से ज्यादा बनाये रखना चाहिए। यदि इनके स्तर में बदलाव होता है तो भोजन में और कड़ाई से नियंत्रण करें तथा आवश्यकता होने पर दवाओं का सेवन करें।

स्वस्थ रहने के लिए आदर्श दशा और हृदय धमनी रोगों, उच्च रक्तचाप से बचाव, शाकहारी व्यक्ति, माँसाहारी व्यक्तियों से ज्यादा सरलता से प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि मांसाहारी भोज्य पदार्थों में कोलेस्टराल और संतृप्त वसा प्रचुर मात्रा में मौजूद होते हैं। फ्री रेडिकल वहुत कम मात्रा में और रेशे नहीं पाये जाते हैं। शाकाहारियों में उसी अवस्था में रहने वाले माँसाहारियों की अपेक्षा कम होता है, तो क्यों न आदतें बदलें, शाकाहारी भोजन का सेवन करें।

मेडिकल कालेज
काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

अतीत की साक्षी : ड्रैगनफ्लाई

डॉ. विनोद कुमार श्रीवास्तव

इलाहाबाद। वर्षा ऋतु में, जुलाई माह की एक गर्म सुबह। सी.एम.पी. महाविद्यालय के वानस्पतिक उद्यान के ताल के किनारे हरेक वस्तु अलसाई और ठहरी सी। कहीं कोई हवा का झोंका भी नहीं। पत्तियों में भी कोई सरसराहट नहीं। ऐसे में मात्र एक ही वस्तु गतिशील है– ड्रैगनफ्लाई अर्थात् 'भमीरी'।

ड्रैगनफ्लाई तीर की भाँति सनसनाती, तमाम दिशाओं में उड़ती रही, कुछ ड्रैगनफ्लाई तो इतनी पतली हैं, मानो सुई। कुछ बड़ी हैं, जो अपनी गरिमामयी उपस्थिति का विशिष्ट एहसास कराती हैं। भाँति भाँति के रंगों की, तितलियों से कम मनमोहक नहीं। वास्तव में, प्रकृति में ऐसा कोई रंग नहीं जो ड्रैगनफ्लाई में दिखाई न दे।

ड्रैगनफ्लाई अधिकतर गतिहीन अथवा मंथर गति वाले जलाशयों के निकट रहती है। जलीय पौधों, अथवा जलाशयों की तटीय वनस्पतियों पर भी बैठी दिखती है। मेरी दृष्टि ड्रैगनफ्लाई के एक खुशनुमा युगल पर केन्द्रित हो जाती है। नर ने अपने पृष्ठ भाग से मादा को, सिर से पीछे से पकड़ रखा है। दोनों ने मिलकर एक सीधी रेखा बना रखी है। नर इसी प्रकार मादा को पकड़े उड़ रहा है। एक और युगल ने मिलकर, एक दूसरे के सहयोग से, एक चक्रीय अर्थात् गोलाकार स्थिति अपना ली है और इसी भाँति उड़ रहे हैं। ध्यान से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों ही युगलों में उड़ान भरने का कार्य तो मात्र नर ही कर रहा है और मादा तो सर्वथा निश्चिंत है, मानो किसी मनोरंजन उद्यान की सैर पर निकली हो।

मेरे पास एक कीट–जाल भी है। यह एक विशिष्ट प्रकार का हत्थायुक्त जाल होता है, जिसे रैकेट की भाँति चलाकर कीट–विज्ञानी कीटों को पकड़ते हैं। अपने कीट–जाल को झटके से लहराकर, मैं वेग से उड़ रही एक ड्रैगनफ्लाई को जाल में पकड़ लेता हूँ। एक नन्हा बालक कौतूहल से यह देख रहा है। दो उँगलियों से पकड़कर, उस ड्रैगनफ्लाई को मैं जाल से बाहर निकाल लेता हूँ, और उस बालक को उपहारस्वरूप दे देता हूँ। नन्हें बालक के पास एक डोर है, जिसको वह ड्रैगनफ्लाई के शरीर से बाँध देता है। अब कभी डोर को ढील देता है, कभी डोर को वापस खींच लेता है और
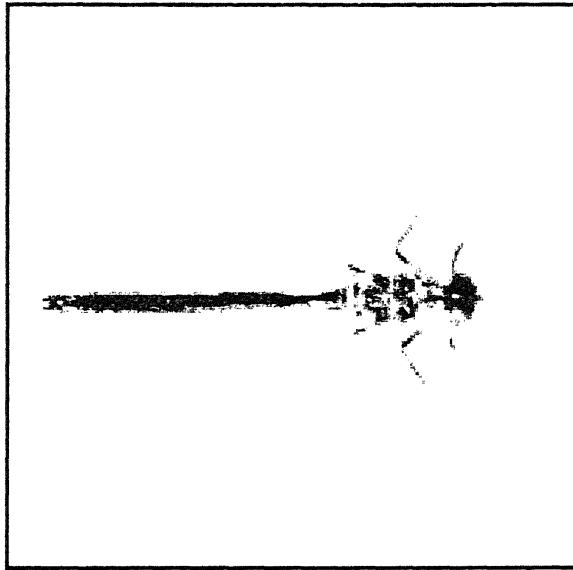
बंधी ड्रैगनफ्लाई को इस तरह उड़ा कर वह उल्लसित हो रहा है।

किसी ड्रैगनफ्लाई को इस प्रकार जाल में फँसाना आसान काम नहीं है क्योंकि वह अत्यंत द्रुत गति से उड़ान भरने वाले शक्तिशाली, पंखदार कीटों में से एक है जिनके उड़ने की गति 40 किमी0 प्रति घंटा तक मापी गई है। ऐसा अनुमान है कि ड्रैगनफ्लाई की कुछेक प्रजातियाँ तो इससे भी अधिक गति पा लेने में सक्षम हैं।

ड्रैगनफ्लाई अपने भार से दोगुने से भी अधिक भार उठा लेती है। ऐसा तो मानव द्वारा निर्मित वायुयान भी नहीं कर पाता। कहते हैं कि ड्रैगनफ्लाई को हेलीकॉप्टर के नाम से ही पुकारते हैं। ड्रैगनफ्लाई एकबारगी ऊपर उठ सकती है, नीचे आ सकती है, एकाएक तीव्र गति पकड़ सकती है, उड़ते उड़ते रुक भी सकती है। दाएँ अथवा बाएँ झुके बिना यह अपनी दिशा भी बदल सकती है। विशेषताएँ तो इतनी हैं कि ड्रैगनफ्लाई पीछे की ओर भी उड़ सकती हैं, व हवा में एक ही स्थान पर टिकी भी रह सकती हैं। और तो और, किसी भिड़ंत के समय यह कलाबाजियाँ भी खा सकती हैं। आश्चर्य लगता है यह जानकर कि ड्रैगनफ्लाई इतना कुछ कर पाने में सक्षम है। आखिर ड्रैगनफ्लाई यह सब कैसे कर लेती है ? यही जानने के लिए तो संयुक्त राज्य अमेरिका एयर फोर्स ने अपने वैज्ञानिकों को प्रचुर अनुदान शोध हेतु दिया हुआ है। इस दिशा में शोधकार्य लगभग सभी समर्थ देशों में वैज्ञानिकगण कर रहे हैं।

विशिष्टताओं में ड्रैगनफ्लाई ने अन्य सभी पंखदार कीटों को वस्तुतः बहुत पीछे छोड़ दिया है। उनके शरीर का लगभग एक तिहाई से लेकर आधे तक का परिमाण तो उन मांसपेशियों का ही होता है, जो उड़ान में ही सहायक होती हैं। ड्रैगनफ्लाई के दोनों जोड़े लंबे, भुरभुरे, सेलोफेन से, पंखों पर रंगों का एक महीन जाल सा बिछा होता है। पंखों की इन्हीं विशिष्टताओं के कारण ही ड्रैगनफ्लाई भाँति-भाँति के आश्चर्यजनक करतब हवा में सम्पन्न कर पाती हैं। मंथर गति की उड़ान पर अग्रपंख व पश्चपंख एक दूसरे से भिन्न लय में फड़फड़ाते हैं। द्रुत गति की उड़ान पर ये चारों पंख एक लय में, एकसाथ सामंजस्य बनाए फड़फड़ाते हैं।

तमाम बातों में किसी भी अन्य पंखदार प्राणी को मात करने के अलावा, ड्रैगनफ्लाई में दृष्टि की भी विलक्षण क्षमता पाई जाती है, जो शिकार करने में विशेषतया सहायक सिद्ध होती है। इनकी बड़ी बड़ी गोलाकार आँखें, सिर का अधिकांश भाग घेरे रहती हैं, दोनों आँखों में 30,000 के लगभग लेंस पाये जाते हैं जिस कारण ड्रैगनफ्लाई के अवलोकन का क्षेत्र 360 अंश तक विस्तृत हो जाता है अर्थात् ये अपने चारों ओर देख पाने की क्षमता रखती हैं। घास में बैठी एक ड्रैगनफ्लाई लगभग एक मीटर की दूरी पर बैठे एक कीट को भी देख लेती है। तीव्र गति से जा कर उसे झपट लेती है, तथा वापस अपने स्थान पर आकर उसे ग्रास बनाने को बैठ जाती है। इतना सब करने में उसे समय कितना लगता है ? एक सेकेंड से मात्र कुछ ही अधिक, बस।

अपनी अद्वितीय छटा तथा आचार-व्यवहार के कारण ड्रैगनफ्लाई का नाम तमाम लोकवार्ताओं से संबद्ध है। कुछेक जनश्रुतियों के अनुसार ड्रैगनफ्लाई सर्पों की सेवक है, तथा मृत सर्पों को जीवित कर देती है। दक्षिण अमेरिका में तो इन्हें 'स्नेक डॉक्टर' के नाम से ही पुकारा जाता है। ड्रैगनफ्लाई को 'डेविल्स डार्निंग नीडिल' का नाम भी दिया गया है। ऐसी मान्यता है कि नटखट बच्चों के सोते समय यह उनके होठों को सिल दिया करती है। सत्य तो यह है, कि मनुष्यों को ड्रैगनफ्लाई से कोई भी घाव अथवा क्षति नहीं पहुँचती है। कहीं कहीं तो इन्हें 'आई स्टिकर', 'हॉर्स स्टिंगर' अथवा 'म्यूल किलर' भी कहकर पुकारा जाता है। ऐसा माना जाता है कि घोड़ों व खच्चरों की आँखें बींध कर ये, अन्ततः उनका वध कर देती हैं हालाँकि वैज्ञानिक तथ्य ऐसी बातों के सर्वथा विपरीत है।

कीट तो वैसे ही भयानक एवं अप्रिय होते हैं तिस पर ऐसा कीट जो आकार में सिरिंज जैसा हो, जिसके पंखों का विस्तार 12 सेमी0 के आसपास हो

और जिसकी आँखें ऐसी चमकती हुई हों, जैसे उनमें दीप ही दीप प्रज्ज्वलित हों, तो उससे डर तो स्वाभाविक ही है। परन्तु अब हम भली भाँति जानते हैं, कि ड्रैगनफ्लाई से डरने जैसी कोई बात नहीं है। इनके शरीर का डरावना पश्च भाग बिच्छू के डंक जैसा कदापि नहीं है बल्कि नर ड्रैगनफ्लाई में तो इस भाग पर ऐसी कँटिया होती हैं, जिसकी पकड़ में आने पर मादा आसानी से अलग नहीं हो पाती। संभोग के पहले नर ड्रैगनफ्लाई मादा को उसी भाँति खींचते हुए उड़ता है, जैसे किसी बिगड़ी कार को खींचता ट्रक। मादा के शरीर में पश्च भाग पर एक ऐसी विशेष संरचना होती है, जिसका कार्य अंडनिक्षेपण है।

ड्रैगनफ्लाई कीट वर्ग के ऑर्डर ओडोनेटा के अंतर्गत आती है। संपूर्ण विश्व में इसकी 5000 से अधिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। अकेले भारतवर्ष से ही 500 के लगभग प्रजातियाँ चिन्हित की जा चुकी हैं। 'ओडोनेटा' का शाब्दिक अर्थ होता है, दाँत वाले अथवा दंतयुक्त जीव। तथ्य तो यह है कि न तो उनमें दाँत होते हैं, न ही ओडोनेटा के मुख की संरचना मनुष्य को काटने हेतु निर्मित ही है। तथापि इसकी संरचना तो मच्छर व अन्य लघु कीटों के पाद इस भाँति व्यवस्थित होते हैं, कि ये मुखद्वार के नीचे, संयुक्त रूप से एक छोटी सी टोकरी सी बना लेते हैं ताकि उसमें जकड़ जाने के पश्चात् शिकार आसानी से भाग न सके। ड्रैगनफ्लाई के तमाम विचित्र प्रचलित नामकरणों में, जो वास्तविक रूप से इनके लिए सर्वथा उपयुक्त है वे हैं, 'मॅस्कीटो हॉक' यानि की मच्छरभक्षी बाज़।

मच्छरों की समस्या संपूर्ण मानव जाति के समक्ष एक विकट समस्या रही है। आज ड्रैगनफ्लाई को जो सामाजिक प्रतिष्ठा मिली हुई है, उसका प्रमुख कारण है इनकी मच्छरों की भक्षण क्षमता एवं उससे जुड़ी उपयोगिता। रोचक तथ्य तो यह है कि, जिस प्रकार वयस्क ड्रैगनफ्लाई का प्रिय भोजन वयस्क मच्छर होते हैं, उसी प्रकार ड्रैगनफ्लाई की इल्लियों का प्रिय भोजन मच्छरों की इल्लियाँ होती हैं। ड्रैगनफ्लाई की इल्ली का मुखद्वार निचले अधर के आवरण से ढका रहता है, जिसके अंत में एक जोड़ा विशेष संरचना कंटिया की होती है, जो वेग से निकल कर, शिकार को फँसा कर खींचने के काम आती है।

व्यक्तिगत रूप से, मुझे तो ड्रैगनफ्लाई का अवलोकन करने में बेहद आनंद का अनुभव होता है। मैं एक ड्रैगनफ्लाई को पकड़ कर, दो उँगलियों से उठा लेता हूँ और उसकी बेहद आकर्षक आँखों में झाँकता हूँ जिनमें अथाह सम्मोहन एवं गहराई होती है। उन आँखों में झाँकना वैसा ही है, जैसे अतीत के गर्भ में झाँकना। क्या कहती हैं ये आँखें ? क्या भेद छुपे हैं इनमें ? मुझे याद आती है ये ड्रैगनफ्लाई तो इस धरती पर तमाम पुरातन पर्वतों से भी पहले से विद्यमान हैं। ड्रैगनफ्लाई ने तो अपनी हवाई दक्षता की विकास प्रक्रिया 'टेरोडैक्टाइल्स'– विलुप्त, उड़ने वाले सरीसृप, लोअर जुरैसिक से लगभग मीसोज़ोइक के अंत तक के भी कुछ पहले ही प्रारम्भ कर दी थी। पक्षी वर्ग के पूर्वज इन्हीं टेरोडैक्टाइल्स को माना जाता है। जीवाश्म बताते हैं कि अपने गौरवपूर्ण समय में ड्रैगनफ्लाई की कुछेक प्रजातियाँ तो इतनी बड़ी होती थीं, कि उनका पंख विस्तार कौवे के पंख विस्तार से भी अधिक था।

ड्रैगनफ्लाई इस पृथ्वी पर डायनोसॉर के आगमन तथा निर्गमन की साक्षी भी रही हैं, एवं उनके पश्चात् उदित हुए वायु जगत के सम्राट, पक्षियों की भी। साथ ही उस संपूर्ण विकास प्रक्रिया की भी साक्षी, जिससे अंततः मानव जाति का आविर्भाव हुआ। पता नहीं, आगामी कितने युगों तक ड्रैगनफ्लाई का अस्तित्व पृथ्वी पर बना रहेगा।

318, अलोपी बाग
इलाहाबाद–211006

अभी तो कितने 'सार्स' आने हैं !

डॉ. आर.सी. गुप्ता

'सार्स क्या है ?'

सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम (सार्स) कारण पूरे विश्व और विशेष कर एशिया प्रशांत क्षेत्र के देशों में त्राहि–त्राहि मची हुई थी। अभी तक इससे 240 से अधिक मौतें हो चुकी हैं और 4000 से अधिक संक्रमित हो चुके हैं। सबसे अधिक 1500 से अधिक रोगी हांगकांग में थे और वह भी इसी नगर के कुलीन बस्ती में, जो वहाँ की सबसे सम्पन्न और धनाढ्य व्यक्तियों की कालोनी है, जहाँ लोग छोटे छोटे अपार्टमेंटों में रहते हैं।

सार्स वायरस साँस के साथ शरीर में प्रवेश करता है। यह बुखार पैदा करता है, इससे सूखी खाँसी आने लगती है। सांस लेने में तकलीफ होन लगती है और निमोनिया के से लक्षण पैदा होने लगते हैं। जिस पर हमला हुआ है वह तीन से छह दिन में मर जाता है।

क्या 'सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम' (सार्स) भी किसी जैवास्त्र प्रयोगशाला से निकल पड़ा है या जानबूझकर छोड़ा गया है ? 21 मार्च को विश्व स्वास्थ्य संगठन के 'ग्लोबल आउटब्रेक एलर्ट एंड रेस्पोंस नेटवर्क' के विशेषज्ञ चीन गये थे। पहले तो चीन ने आनाकानी की, फिर जाँच करने की अनुमति दी। जैवास्त्रों के विशेषज्ञों के शक की सुई चीन और अमरीका पर है।

एक संदेह यह भी है कि दवा–विक्रेताओं को अपनी दवाएँ बेचने के लिए नई नई बीमारियाँ चाहिए, जिनका कोई इलाज न हो। बस, जो सबसे पहले दवा या टीका निकालेगा, उसकी चाँदी ही चाँदी। दवा उद्योग में भी अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ही सबकी सिरमौर हैं। जिस तरह नए नए कम्प्यूटर वाइरस छोड़े जाते हैं, ताकि एंटीवाइरस प्रोग्राम बिकें, वैसे ही नए नए संक्रामक वाइरस भी पैदा किए जा सकते हैं, ताकि एंटीवाइरस और टीके बिकें। अभी तक सार्स फैलाने वाले विषाणु को किसी भी प्रचलित एंटीबायोटिक से काबू में नहीं किया जा सका है। रिबोवेरिन जैसे कुछ ही विषाणुरोधी दवाओं के इंजेक्शन कुछ असर दिखा पा रहे हैं।

17 मार्च तक विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 10 देशों में 11 प्रयोगशालाएँ बनाकर असली हमलावर को पकड़ने के लिए अपना जाल फैला दिया था। पूरी दुनिया में Travel Alert घोषित कर दिया गया था। हांगकांग और चीन के गुआडोंग और बीजिंग की यात्राओं को खासतौर से खतरा बताया गया था। वैज्ञानिकों ने सार्स–वाइरस को कोरना वाइरस कुल का सदस्य बताया है और इसका आनुवंशिक कोड मालूम कर लिया ग़या है। यह आर.एन.ए. वाइरस है।

क्या सार्स जैवयुद्ध का परीक्षण है ?

असल में जैव युद्ध के घातक हथियारों में जीवाणु (बैक्टेरिया) और विषाणु (वाइरस) का ही उपयोग किया जा रहा है। हर खतरनाक खोज की तरह जैवयुद्ध का घातक विचार भी अमरीका में ही पनपा और जैवयुद्ध तथा रासायनिक युद्ध के पहले परीक्षण अमरीका ने कर लिए। देखा गया है अचानक कहीं कोई रहस्यमय रोग प्रकट होता है, फैलता है, सैकड़ों–हजारों को अपना शिकार बनाता है और गायब हो जाता है। क्या आपको नहीं लगता कि ये सब जैवास्त्रों के गुप्त परीक्षण हैं ? पिछले दस सालों में दक्षिण पूर्व एशिया में और पश्चिमी

प्रशांत सागरीय क्षेत्रों में फ्लू से लेकर जापानी एन्सिफेलाइटिस (मस्तिष्कशोथ) तक अनेक विषाणुरोग फैले हैं। इनमें से आस्ट्रेलिया में हेंड्रा वाइरस (1984), चमगादड़ों का वाइरस (1996), भवाग्ले वाइरस (1997) तथा जापानी मस्तिष्कशोथ वाइरस (1998) ने महामारी फैलायी।

जापानी मस्तिष्क शोथ अब केवल पश्चिमी प्रशान्त सागरीय क्षेत्रों तक सीमित न रहकर भारत में भी पहुँच गया है और इसके मुख्य केंद्र हैं, पूर्वी उत्तर प्रदेश, उनसे सटे बिहार और नेपाल। इसी तरह अनेक प्रकार के नये नये वाइरस से नये नये रोग उत्पन्न हो रहे हैं।

हांगकांग के प्रिंस आफ वेल्स अस्पताल में कुछ रोगियों के स्वस्थ हो जाने पर उनका सीरम अन्य रोगियों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया गया। साथ ही एंटीवाइरल औषधियों और स्टेरॉयड दवाओं की कॉकटेल दी गई। फिलहाल चीन, हांगकांग और सिंगापुर का पर्यटन सहित हर तरह का व्यापार प्रभावित है। एशियन डेवलपमेंट बैंक ने दक्षिणपूर्व एशिया में इस साल सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में गिरावट की घोषणा कर दी है।

सार्स के संक्रमण के लिए रोगी से घनिष्ठ संपर्क की जरूरत नहीं है। उसके आसपास की हवा, पानी, संक्रमित वस्तुएँ आदि ही रोग को फैलाने के लिए काफी हैं। इसलिए यह रहस्यमय रोग और भी विकट बन गया है। 40 वर्ष और अधिक की उम्र के लोगों को सार्स जल्दी पकड़ता है। इस रोग से केवल वे ही बच पाते हैं जिनके शरीर में रोगप्रतिरोधक प्रणाली मजबूत है। जीवाणु और कीटाणु तो रहेंगे ही क्योंकि मानव शरीर के हर भाग में, चर्म से लेकर आँतों तक में, जीवाणु और कीटाणु मौजूद हैं और वे मनुष्य को काफी हद तक लाभ ही पहुँचाते हैं और विषम परिस्थितियों में ही मानव शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं। 'सार्स' लगता है अब शान्त है पर यह 'सार्स' या उस जैसे कितने विषाणु नये नये रूपों में आते जायेंगे और मानव को याद दिलाते जायेंगे कि उनकी भलाई कीटाणु–जीवाणु नष्ट करने में नहीं है, पर उनके साथ तारतम्य बिठाने में है।

कभी कभी यह प्रश्न उठता है कि क्या यह सचमुच नये वाइरस हैं या फिर मनुष्य द्वारा उत्पन्न विषम परिस्थितियों में इसने अपने को नये रूप में ढाला है ? अभी कुछ दिन पूर्व ही एक पुस्तक प्रकाशित हुई है 'The River' जो एडवर्ड हूपर नामक एक अंग्रेज पत्रकार ने जो अफ्रीका में कार्य कर रहे हैं, लिखा है। आज से 20 वर्ष पूर्व तक 'एड्स' जीवाणु के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, कई अन्य वैज्ञानिकों ने जैसे लुईस पाश्चल और स्टेनली प्लाटमिन का मानना है कि 1950 के दशक में पोलैंड के वैज्ञानिक 'हिलेरी काकरोवेस्की' ने पोलियो का जो वैक्सीन, बन्दरों के गुर्दों पर बनाया था, वही परिवर्तित होकर 'एड्स' वायरस में बदल गया। क्योंकि 'एड्स' नामक यह रोग भी अफ्रीका के उन्हीं क्षेत्रों में हुआ जहाँ पर यह पोलियो वैक्सीन लगाया गया था। यह कितना सत्य है, कहना मुश्किल है, पर यही सत्य है कि दुनिया में नये नये जीवाणु पैदा हो रहे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व भारत की ही एक खबर है कि जो 'वायरस' अमेरिका के घने जंगलों में पाया जाता है वह अब कुन्देमुख और उसके आसपास में पाया गया है। यह वायरस तेज बुखार, सर्दी, उल्टी, खाँसी और चमड़ी पर चकत्ते पैदा कर देते हैं। अन्य जीवाणुओं की तरह 'एन्टीबायोटिक' का इस पर असर नहीं होता। इसी तरह 6 माह पूर्व उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर के आसपास इन्हीं सभी लक्षणों के कारण काफी बच्चे मौत के शिकार हुए थे।

इस गंभीर चर्चा के जो भी निष्कर्ष निकले, पर इतना सत्य है कि 'एड्स' भी शायद मनुष्य के द्वारा प्रौद्योगिकी में बदलाव और उसके व्यवहार की एक बड़ी दुर्घटना है, जिसे समय ही सुलझा पायेगा। पर सत्य है कि यह है करामात, एक अदृश्य विषाणु (वायरस) की जो कोरी आँख से नजर भी नहीं आता।

78–बी, टैगोर टाउन
इलाहाबाद–21002

पक्षियों के उड़ान की रोचक दुनिया

डॉ. दीपक कोहली

सन् 1861 में बावरिया में एक आश्चर्यजनक जीवाश्म मिला, जिसको आर्किओप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के नाम से सम्बोधित किया गया। इसमें कुछ लक्षण सरीसृप वर्ग के थे तथा कुछ पक्षी वर्ग के। सरीसृप वर्ग के कुछ ऐसे लक्षण, जैसे दाँतों वाला जबड़ा तथा हड्डियों वाली पूँछ की मौजूदगी को नकारा नहीं जा सकता था। इसके साथ ही, इस जंतु का शरीर एक विशेष प्रकार के पंखों से ढका हुआ था जोकि वर्तमान में पाए जाने वाले पक्षियों से काफी भिन्न थे। ऐसा समझा जाता है कि यह प्राणी पेड़ की डालों पर रहता था, जहाँ से यह सरकता हुआ नीचे की शाखाओं तक अथवा धरती तक कीड़े मकोड़ों को अपने जबड़ों द्वारा झपटने के लिए उतरता होगा। एक बार जमीन पर उतरने के बाद यह अपने पंजों (अल्पविकसित) की सहायता से दोबारा चढ़ जाता रहा होगा।

इस जीवाश्म के बाद मिली जानकारियों ने एक बार फिर वैज्ञानिकों को पृथ्वी पर पाए जाने वाले उड़ानरहित पक्षियों के विकास पर गौर करने के लिए बाध्य कर दिया। उड़ानरहित पक्षियों जैसे ऐमू एवं शुतुरमुर्ग में कूटक (Keel) या उभरी छाती की अस्थियाँ नहीं पाई जातीं, जबकि उड़ान भरने वाले पक्षियों में इसी कूटक से उड़ान में सहायता करने वाली मांसपेशियाँ बड़ी दृढ़ता से जुड़ी रहती हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि ये उड़ानरहित पक्षी येमू और शुतुरमुर्ग आर्किओप्टेरिक्स के अत्यधिक निकट हैं। उड़ानरहित पक्षियों के कंकाल का सूक्ष्म अवलोकन करने पर वैज्ञानिकों को ज्ञात हुआ कि यह वास्तव में उड़ने वाले पक्षियों का अपह्रासी रूप है। इसलिए ऐसा माना जाता है कि किसी समय ये पक्षी उड़ने में सक्षम रहे होंगे, पर किसी विकासीय परिवर्तन की वजह से कुछ उड़ने वाले पक्षी, उड़ानरहित पक्षी बन गए।
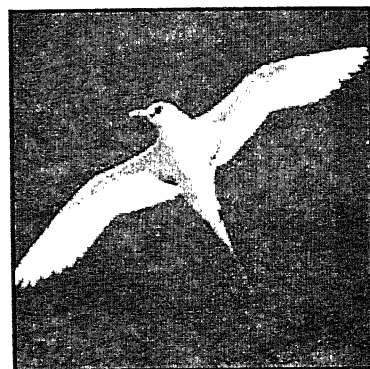
कुछ बड़े न उड़ सकने वाले पक्षी तो अब विलुप्त हो चुके हैं, क्योंकि आदिमानव को उनसे अधिक आसान शिकार ढूँढने पर भी नहीं मिलता था। इन विलुप्त हुए उड़ानरहित पक्षियों में मेडागास्कर की 'एलीफैंट बर्ड' जोकि अब केवल जीवाश्मों के रूप में ही देखने को मिलती है, प्रमुख है। 'एलीफैंट बर्ड' के अतिरिक्त 'मोआस' भी अंधाधुंध शिकार के कारण विलुप्त हो चुकी है। किन्तु इन विलुप्त उड़ानरहित पक्षियों के अतिरिक्त अनेक उड़ानरहित पक्षी अभी भी जीवित हैं। उदाहरणार्थ, अफ्रीका में शुतुरमुर्ग, आस्ट्रेलिया में येमू, न्यूगिनी में कसोवरी एवं दक्षिणी अमेरिका में रीआ आज भी पायी जाती हैं। इन पक्षियों में अपने पूर्वजों के अनेक लक्षण जैसे तेज दौड़ लगाने हेतु लम्बी तथा बड़ी टाँगें एवं अवशिष्ट पंख पाये जाते हैं। ये अवशिष्ट पंख तथा लम्बी टाँगें इस तथ्य की और दृढ़ करती हैं कि इन पक्षियों ने काफी समय पूर्व ही उड़ान भरने की शक्ति खो दी थी। कुछ पक्षियों ने तो कसोवरी की तरह अपनी जान बचाने के लिए घने जंगलों में

अपने आपको कैद कर लिया। छोटी सी पालतू लोमड़ी के आकार की चिड़िया कीवी अपने बचाव के लिए केवल रात में ही बाहर निकलती है तथा यह न्यूजीलैंड के घने जंगलों में पाई जाती है।

ये सारे उड़ानरहित पक्षी 'रेटाइड्स' वर्ग के हैं जोकि अपने पंखों का प्रयोग प्रणोदक की तरह नहीं करते। इसके कई और पक्षी जैसे 'पैंग्विन' एक दूसरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके पास ऐसे पंख होते हैं जिनकी सहायता से वे पानी में भी उड़ान भर सकते हैं। इनकी 18 जातियाँ केवल दक्षिणी गोलार्द्ध में ही पायी जाती हैं। ऐसा समझा जाता है कि इनका उद्‌भव भी यहीं हुआ था। उड़ने वाले पक्षियों में पाए जाने वाले अदृढ़ पंखों के विपरीत उड़ानरहित पक्षियों में घने शल्क की तरह पंखों की पक्षति (Plumage) पायी जाती है। यह पंखों का मोटा कोर इन पक्षियों को धारारेखी बनाने के अतिरिक्त, पक्षियों की शून्य से भी नीचे के तापमान पर उनकी रक्षा करता है।

फिसलने या सरकने वाले पक्षियों के पंख अधिकतर बहुत लम्बे व चौड़े होते हैं। न्यूनतम प्रयास से वायुवाहित रहने के लिए किसी भी पक्षी को अधिक से अधिक ऊपर जाने की आवश्यकता होती है। इस ऊँची उठान को पंखों का क्षेत्रफल बढ़ाकर प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह के पंख बाज़ में पाए जाते हैं जोकि ज्यादातर समय हवा में तैरते हुए बिना किसी खास बनावट के व्यतीत करते हैं।

कई पक्षी उन हवा की धाराओं का प्रयोग भी करते हैं जो मुख्य व्यवधानों जैसे भृगु एवं पर्वतीय किनारों से ऊपर की दिशा में मुड़ती हों। अतएव, अधिक हवा वाले दिन गंगाचिली (घोमरा) तथा फल्मेरस आमतौर से समुद्री भृगु के ऊपर पंख फैलाए घूमती नजर आती हैं और जब वह यह महसूस करती है कि उसको सहारा देने वाली धाराओं में परिवर्तन हो रहा है तो बड़ी सहजता से उस धारा से बचकर निकल जाती है।

उड़ान चाहे किसी तरह की हो, प्रायः बड़े पक्षियों द्वारा ही व्यवहार में लाई जाती है, जबकि छोटे पक्षी केवल ग्लाइड ही कर सकते हैं। छोटे पक्षियों को गत्यात्मक शक्ति स्वयं उत्पन्न करनी पड़ती है, जिसे ये अपने पंखों को जोर जोर से हिलाने के बाद प्राप्त करते हैं। पंखों की गति तो जटिल होती है, पर पंखों का और शरीर के बीच बना कोण ही लिफ्ट तथा महत्वपूर्ण अग्र प्रणोद उत्पन्न करता है। ये दोनों ही बल पक्षी को आगे बढ़ाने में सहायता करते हैं।

तेज उड़ने वाले पक्षी आमतौर पर 'फ्लैपिंग' द्वारा ही उड़ान भरते हैं। सबसे अधिक तीव्र उड़ान वाले पक्षियों में अपेक्षाकृत पतले एवं नुकीले पंख पाए जाते हैं, जिनकी अगर अनुप्रस्थ काट में अवलोकन किया जाए तो तिकोने आकार के नजर आते हैं। इस प्रकार के पंख विडयन तथा ग्लाइडिंग करने वाले पक्षियों के चौड़े पंखों से एकदम उल्टे होते हैं। बत्तख, गीज, कबूतर एवं जलग (wader) का नाम तेज उड़ान भरने वाले पक्षियों में लिया जाता है।

उड़ान भरने की गति के सम्बन्ध में सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि पक्षियों में आखिर वह कौन सी विशेषता है जिसकी वजह से एकदम छोटे से घोंसले पर आकर सही तरीके से बैठ जाते हैं ? स्पष्ट रूप से जो दिक्कत नीचे उतरते समय सामने आती हैं वह यह कि पक्षी को रोक लगाने के समय का बिल्कुल सही सही अनुमान लगाना पड़ता है, वरना इसे उतरते समय आघात भी पहुँच सकता है। इसलिए इन पक्षियों को एकदम रोक लगाने तथा साथ ही आखिरी क्षण तक हवा में उड़ते रहने के लिए एक आवश्यक लक्ष्य तक पहुँचना पड़ता है।

एक अलग तरीके की उड़ान को मँडराना कहते हैं। कई छोटे पक्षी जैसे मक्षिकाक्ष, फिंच तथा गौरैया मँडराते हैं। परन्तु इसमें अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ती है और क्रिया कुछ ही समय पश्चात् बंद हो जाती है। मँडराने की कला में सबसे दक्ष पक्षी गुंजन पक्षी होता है। इस पक्षी के पंखों की बहिरेखा सघन होती है तथा पंख अत्यधिक छोटे होते हैं। फूल के सामने यह सतर्कतापूर्वक मंडराते हुए कुछ क्षण के लिए

शेष पृष्ठ 22 पर

पृष्ठ 4 का शेष ..

वाहनों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस मिश्रक का नाम रखा गया है 'प्योरेनॉल'। 82–94 प्रतिशत सामान्य डीजल + 5–15 प्रतिशत ईथेनाल, 3 प्रतिशत प्योरेनाल मिश्रण को प्रायोगिक तौर पर अत्यंत सफल पाया गया है। इस मिश्रण से सामान्य डीजल से चलने वाले वाहनों के इंजनों को कोई नुकसान नहीं होता है। साथ ही उनके उत्सर्जनों में विषैली गैसों की मात्रा काफी घट जाती है तथा उनकी दक्षता भी बढ़ जाती है।

ईथेनाल–मिश्रित–डीजल या ई–डीजल के अलावा डीजल का एक अन्य विकल्प है– तेलयुक्त अखाद्य बीज। भारत में इन बीजों के उत्पादन साल, बहुआ, नीम, करंज, जंगली खुमानी, जैट्रोफा, जुजोवा, च्यूरा, कोकुम, कुसुम इत्यादि। इन सभी फलों के बीजों से निकलने वाला तेल डीजल का विकल्प बन सकता है। इनके तेल के प्रयोग से प्रदूषक गैसों के उत्सर्जन में कमी आती है क्योंकि इनके तेल में गंधकीय यौगिकों की मात्रा डीजल की अपेक्षा काफी कम होती है। इनमें से जैट्रोफा को डीजल के विकल्प के रूप में सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है।

जैव ईंधनों की उपलब्धता

तीसरा मूल प्रश्न है जैव ईंधन के रूप में प्रयुक्त होने पर इतना ईथेनाल कहाँ से उपलब्ध होगा ? सामान्यतया ईथेनाल ऐल्कोहल के रूप में शर्करायुक्त या स्टार्चयुक्त कृषि उत्पादों के किण्वन से प्राप्त होता है। सामान्य ऐल्कोहल में 95 प्रतिशत ईथेनाल (C_2H_5OH) होता है। इसे ईंधनयुक्त ईथेनाल बनाने के लिए मिश्रित 5 प्रतिशत जल को निकालना पड़ता है जिसके लिए विशेष आसवन–सांद्रण संयंत्र प्रयुक्त होते

सारणी–2 : थाईलैंड में ईथेनाल स्रोतों का विश्लेषण

मूल उत्पाद	लाभ	हानि	ईथेनाल उत्पादन की लागत बाट* प्रतिटन ईथेनाल
गन्ना	आसान परिसंस्करण	अल्प अवधि पिराई मौसम उच्च मूल्य सीमित उपलब्धता अल्प अवधि भंडारण क्षमता	8.6
शीरा	आसान परिसंस्करण निम्न मूल्य भंडारण क्षमता	सीमित उपलब्धता प्रदूषण	7.38
कसावा	यथोचित उपलब्धता स्वच्छ परिसंस्करण चिप्स की भंडारण क्षमता	मूल्य अनिश्चितता निम्न सहउत्पाद मूल्य अल्प अवधि कंदमूल भंडारण	7.1
अनाज (मक्का)	स्वच्छ परिसंस्करण उच्च सहउत्पाद मूल्य भंडारण क्षमता	उच्च मूल्य	8.4

हैं। इसलिए ईंधन योग्य ईथेनाल के प्रमुख स्रोत कृषि उत्पाद ही हैं। इनमें प्रमुख हैं गन्ना व मक्का। जैसा कि बताया जा चुका है अमेरिका में ईंधनयोग्य ईथेनाल मक्का से तथा ब्राजील में गन्ने से बनता है। गन्ना से ब्राजील में वहाँ की कुल गन्ना उपज का 52 प्रतिशत सीधे ईथेनाल के उत्पादन में प्रयुक्त होता है। ईथेनाल ईंधन के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले नये देश हैं : थाईलैंड, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा कई यूरोपीय देश। थाईलैंड में वहाँ के राष्ट्रीय ईथेनाल प्रोग्राम के अंतर्गत कसावा उत्पादन के लिए उपयोगी मानी जा रही है (सारणी–2)।

इसी प्रकार अमेरिका में मक्का से ऐल्कोहल उत्पादन बढ़ाने के प्रयास चल रहे हैं। वहाँ की 5 अरब लीटर वार्षिक ईथेनाल उत्पादन की आवश्यकताओं को केवल मक्का से प्राप्त कर लेने की संभावना है। फिर भी वहाँ फसलों की भूसी को उपचारित कर किण्वन करने की योजनाएँ हैं जिसके अंतर्गत सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज तथा लिग्नोसेल्यूलोज को शर्करा में परिवर्तित करने के बाद या शर्करा परिवर्तन तथा किण्वन को साथ साथ कराकर प्रविधि खर्च को काफी सीमा तक कम किया जा सका। कृषि फसल अपशिष्ट किण्वन की प्रविधि के खर्च में अभी तक तीन गुना कमी कर ली गयी है। फिर भी यह प्रविधि अन्य स्रोतों से उपलब्ध ईथेनाल से मँहगा ईथेनाल ही बना पाती है। कृषि अपशिष्ट के कम उपयोग से बड़े स्तर पर ऐल्कोहल बनाने के लिए निर्माण सामग्री का अभाव नहीं रहेगा। आज तक जो कृषि अपशिष्ट जलाकर भस्म कर दिया जाता था उसे ईथेनाल उद्योग में खपाया जा सकेगा। इसके दो पर्यावरणीय लाभ भी होंगे– एक तो अपशिष्ट के जलाने से होने वाला वायु प्रदूषण कम होगा तथा ऐल्कोहल का प्रयोग अन्य पारंपरिक ईंधनों की अपेक्षा पर्यावरण को भी कम प्रदूषित करेगा।

भारत में ईथेनाल की संभावना

यद्यपि आयातित तेल पर निर्भरता कम करने के उद्‌देश्य से विश्व के सभी देशों में जैव ईंधनों के विकास का मार्ग खुला है, तो भी जैव ईंधनों को प्रचलन में लाना कोई आसान काम नहीं है। विशेषतः ऐसे देशों में जहाँ जनसंख्या अधिक हो क्योंकि जैव सम्पदा का बड़ा भाग तो करोड़ों लोगों के लिए भोजन जुटाने में ही लग जाता है। भोजन के लिए कृषि के दबाव से धरती पहले से ही प्रदूषण की चपेट में है। फिर ईंधन के लिए भी धरती का दोहन कितना न्यायसंगत व व्यावहारिक होगा यह कहना कठिन है। फिर भी संपदा प्रबंधन व इकोफार्मिंग के सिद्धांतों का पालन करते हुए भोजन, वस्त्र व अब ईंधन की आवश्यकताएँ इस बदलते आर्थिक परिवेश में अंततः धरती के सदुपयोग से ही पूरी करनी पड़ेंगी।

देश के वर्तमान ऐल्कोहल उद्योग की यदि हम समीक्षा करें तो हम पाते हैं कि हमारे यहाँ ऐल्कोहल बनाने की कुल क्षमता लगभग 30 करोड़ लीटर है जबकि इस विशाल स्थापित परितंत्र से हम केवल 130 करोड़ लीटर ऐल्कोहल बना रहे हैं। इसमें से 95 प्रतिशत से अधिक ऐल्कोहल केवल चीनी उद्योग के अपशिष्ट शीरे से बन रहा है। देश का चीनी उद्योग एक विशाल उद्योग है तथा वर्तमान ऐल्कोहल उत्पादन के बाद भी इतना शीरा बच जाता है कि उससे लगभग 50 करोड़ लीटर ऐल्कोहल और बनाया जा सकता है जो कि पूरे देश के लिए 5 प्रतिशत की दर से पेट्रोल में मिलाने के लिए पर्याप्त है। यदि डीजल में भी ऐल्कोहल मिलाने की योजना कार्यान्वित होती है तो वर्ष 2010 तक लगभग 200 करोड़ लीटर और ईथेनाल की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार वर्ष 2010 तक हमारी कुल ईथेनाल माँग स्थापित क्षमता से केवल 50 करोड़ लीटर कम रह जायेगी। इतनी क्षमता आने वाले 5–10 वर्षों में आसानी से बढ़ायी जा सकती है। तात्पर्य यह है कि यदि हमें ई–पेट्रोल या ई–डीजल को व्यवहार में लाना है तो हमारे यहाँ संरचनात्मक आधार की कमी नहीं है। इस कार्य के लिए जिस राजनैतिक इच्छा शक्ति की अपेक्षा की जाती है वह भी अब सरकार के इरादों से स्पष्ट नजर आती है।

पर्याप्त संरचनात्मक क्षमता तथा राजनैतिक इच्छा शक्ति के बावजूद भारत में परिवहन क्षेत्र के लिए ऐल्कोहल जुटाने के लिए कृषि अनुसंधान व औद्योगिक

क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता है। जहाँ औद्योगिक परिसंस्करण प्रक्रियाओं को आर्थिक रूप से विश्वसनीय व व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है वहीं कृषि अनुसंधान द्वारा ऐल्कोहल के लिए नए व उन्नत स्रोतों का विकास होना जरूरी है। कृषि फसलों में सुधार कर उनका शर्करा परिमाण बढ़ाना, कुछ खाद्यान्न फसलों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादि का शर्करा व स्टार्च परिमाण बढ़ाना अपेक्षित है ताकि उनसे ऐल्कोहल बनाना कम खर्चीला व व्यावहारिक हो सके। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने देश की मुख्य फसलों तथा गोदामों में पड़े खराब हुए अनाज से ऐल्कोहल बनाने का मूल्यांकन किया है। औद्योगिक स्तर पर हमें ऐल्कोहल के लिए केवल शीरे व गन्ने पर निर्भरता कम करनी होगी तथा अन्य फसलों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, आलू, रतालू तथा शकरकंदी को भी ऐल्कोहल में परिवर्तित करना पड़ेगा। यही नहीं, कृषि अपशिष्ट जैसे धान की पुआल, बगास इत्यादि को भी ऐल्कोहल में परिवर्तित करने के लिए व्यावहारिक प्रौद्योगिकी का भी विकास करना होगा।

ई–पेट्रोल और ई–डीजल के अतिरिक्त देश में बायो–डीजल बनाने की भी प्रचुर संभावनाएँ हैं। देश में लगभग 50 लाख टन से अधिक खाद्य बीज पैदा करने की संभावना है जबकि अभी इसमें से केवल 8–10 लाख टन बीज न केवल हमारी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है बल्कि उनके प्रयोग से साबुन, सौंदर्य सामग्री, औषधि, केश तेल, चिकनाई द्रव बनते ही हैं साथ ही ये डीजल व मिट्टी के तेल के विकल्प के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। इनके वृक्षों का प्रसार क्षेत्र बढ़ाने की प्रचुर संभावना है। यदि इन संभावनाओं को वास्तविकता में बदला जाय तभी इनसे प्राप्त बीजों को बायो–डीजल के औद्योगिक स्तर पर उत्पादन में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके अलावा जैट्रोफा जैसी फसलों की बेकार पड़ी भूमि जैसे रेल लाइन के किनारे, सड़कों के किनारे वृहद स्तर पर खेती की जा सकती है। तेल बीज तथा शाकीय तेल विकास बोर्ड ने 10 राज्यों में फैले देश के 200 ऐसे जिलों की पहचान की है जहाँ इस प्रकार की भूमि उपलब्ध है। इन क्षेत्रों में जो अधिकतर पिछड़े क्षेत्र हैं, जैट्रोफा की व्यावसायिक खेती से न केवल बायो–डीजल उपलब्ध कराया जा सकेगा बल्कि वहाँ के लोगों के लिए रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

पर्यावरण विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–12

पृष्ठ 19 का शेष ..

ठहरते हैं। इनके छोटे से पंख इतनी शीघ्रता से फड़फड़ाते हैं कि मनुष्य तो इन्हें देख ही नहीं पाता है और ये अपनी पतली चोंच फूल के अन्दर डाल देते है और मकरंद पी जाते हैं। एक फूल से दूसरे फूल पर मँडराते हुए यह पक्षी बड़ी सफाई से अपनी गति एवं दिशा में परिवर्तन करता रहता है। गुंजन पक्षी की सबसे छोटी जाति, जोकि 3 ग्राम से भी कम भार की होती है, के पंख एक सेकण्ड में 80 बार फड़फड़ाती है। गुंजन पक्षी ऊर्ध्वाघात तथा अवस्पंदन दोनों के द्वारा ही उड़ान भरता है और इस प्रकार उनकी कोई भी गति बेकार नहीं जाती है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि इतनी तेज क्रिया को अत्यधिक ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। उड़ान में सहायक मांसपेशियों के शरीर के अंगों को बिना व्यवधान के खून मिलता रहे, इसलिए इनका हृदय एक मिनट में 600 बार धड़कता है, जोकि और पक्षियों की अपेक्षा ज्यादा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पक्षियों के उड़ान की दुनिया काफी रहस्यमयी है, जो वैज्ञानिक अन्वेषणों के फलस्वरूप अब परत दर परत खुलती जा रही है।

5/104, विपुल खण्ड
गोमती नगर
लखनऊ–10

डॉ. रघुनाथ अनन्त मशेलकर

प्रो० रामचरण मेहरोत्रा

आज भारतवर्ष में देदीप्यमान एक लाल सितारे को कौन नहीं देख सकता, जिसने देश के विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में संसार भर को चकित कर देने वाला अविश्वसनीय परिवर्तन ला दिया है। उनके प्रोत्साहन से ही सन् 1995 में कुछ गिने–चुने पेटेण्टों के स्थान पर पिछले कुछ समय में गवेषित प्रविधियों के लगभग 150 पेटेण्ट अमरीका में सन् 2003 में ही रजिस्टर कर दिए हैं। उन्हीं ने कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च (सी.एस.आई.आर.) का बजट 100 करोड़ से बढ़ाकर 1300 करोड़ तक पहुँचा दिया है और अपने पेटेंटों पर आधारित उद्योगों में से 100 करोड़ रुपये से कहीं अधिक लाभ अर्जित होना आरम्भ हो गया है। आश्चर्य होता है कि ये सब सफलताएँ एक ही वैज्ञानिक तथा तकनीकी विशेषज्ञ के नेतृत्व के कारण ही सम्भव हो पायी हैं और उस महारथी का नाम है **'रघुनाथ अनन्त 'रमेश' मशेलकर'**, जिनको 1995 में सी.एस. आई.आर. का महानिदेशक नियुक्त किया गया था।

स्वाभाविक है कि आकाश में मशेलकर नामी यह सितारा अत्यन्त बहुमूल्य 'लाल' मणि के रूप में चमक रहा है। इस महानतम वैज्ञानिक की उपलब्धियों से तो भारतवासी ही क्या, संसार भर आश्चर्यचकित है, परन्तु बहुत कम लोगों को ही यह जानकारी होगी कि सब को अचम्भे में डाल देने वाले इस रत्न पर 'गुदड़ी के लाल' का प्रयुक्त विशेषण पूर्णतया सच उतरता है।

गोआ के मशेल गाँव में 1 जनवरी 1943 को श्रीयुत अनन्त और श्रीमती अन्जनी के घर में जन्मे इस बच्चे रमेश को बम्बई में मेहनत मजदूरी से पेट भरने वाली अपनी विधवा माता की छोटी सी कोठरी में इतना भी स्थान प्राप्त नहीं था कि वह वहाँ शान्ति से अपना अध्ययन कर सकता। इसके लिए तो उसे बम्बई में चौपाटी पर लगे प्रकाशस्तम्भों का ही सहारा लेना पड़ता था और किसी
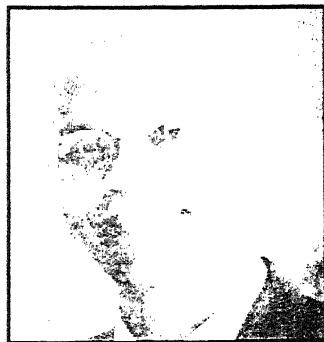
जानकार ने लिखा है कि रघुनाथ को कागज तक के लिए आवश्यक प्रतिदिन 3–4 पैसे भी उपलब्ध कराना निर्धनता से लाचार माँ के लिए असम्भव था। स्कूल और उसके बाद 1960 तक यूनियन हाई स्कूल, मुम्बई में ऐसी असहनीय सी कठिन परिस्थितियों में अध्ययन करने वाले बालक ने जब 1960 की परीक्षा में बैठे 150000 परिक्षार्थियों में से योग्यता में 11वाँ स्थान प्राप्त करके अविश्वसनीय सफलता प्राप्त की तो सब को बहुत ही आश्चर्य हुआ, परन्तु इसी सफलता से नवयुवक रघुनाथ का जीवन– संघर्ष कुछ कम कष्टदायक हो गया।

इसके बाद उन्होंने जय कालेज से सन् 1962 में इण्टरमीडिएट और बम्बई विश्वविद्यालय से सन् 1966 में बी.केमिकल इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की। डॉ0 मशेलकर का शोधकार्य सौभाग्य से भारतवर्ष के अत्यन्त यशस्वी केमिकल इंजीनयरिंग प्रोफेसर मनमोहन शर्मा के निर्देशन में आरम्भ हुआ। सन् 1969 में बम्बई विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर वे आगे के अनुसंधान के लिए ब्रिटेन के सैलफोर्ड विश्वविद्यालय

चले गए, जहाँ उन्होंने प्रोफेसर जे. उल्ब्रेक्ट के साथ केमिकल इंजीनियरिंग में अति उच्च कोटि का खोज–कार्य किया। सैलफोर्ड के अनुसंधान को इतना सराहा गया कि सन् 1970 में विश्वविद्यालय अधिकारियों ने उन्हें लेक्चरर के पद के लिए चुन लिया।

भारतवर्ष लौटने पर उन्हें पूना स्थित नेशनल केमिकल लेबोरेटरी में सहायक निदेशक के उच्च पद पर नियुक्त किया गया, परन्तु उनकी योग्यता के आधार पर प्रयोगशाला के डाइरेक्टर के समकक्ष ही वेतन स्वीकृत किया गया। इस पद पर 13 वर्ष कार्य करने के पश्चात् सन् 1989 में सीधे निदेशक के पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी। इस प्रकार 46 वर्ष की आयु में वह नेशनल केमिकल लैबोरेटरी जैसी प्रसिद्ध प्रयोगशाला के सबसे कम आयु वाले निदेशक बन गए और इसी प्रकार सन् 1995 में सबसे छोटी उम्र में नियुक्त होने वाले सी.एस.आई.आर. के महानिदेशक या डाइरेक्टर जनरल नियुक्त हुए।

डॉ0 मशेलकर अपने पॉलीमर रिएक्शन इंजीनियरिंग, ट्रांसपोर्ट पद्धति तथा नॉन–न्यूटोनियन द्रवों के अध्ययन में संसार में अग्रणी अनुसंधानकर्ता माने जाते हैं। आज भी ये इन दिशाओं में अनुसंधान करने के लिए कुछ न कुछ समय निकाल ही लेते हैं। इसके अतिरिक्त अपने देश की तकनीकी प्रगति के लिए तो उनका योगदान अविस्मरणीय होगा। साथ ही डॉ0 मशेलकर का सर्वोच्च योगदान तो स्वदेश में पहले पहल एक तकनीकी वातावरण एवं मानसिकता को जन्म देने का माना जा रहा है।

इस वर्ष तो सी.एस.आई.आर. भी डॉ0 मशेलकर की ही भाँति अपनी हीरक जयन्ती मना रही है। 1947 ही में स्वतंत्रता प्राप्त होते ही देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने इस ओर विशेष बल दिया था कि राजनैतिक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए और स्वावलम्बन के लिए यह अति आवश्यक है कि देश ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में संसार में अपना नाम ऊँचा करे, और साथ ही विकसित राष्ट्रों में इस नयी उभरती तकनीकी दिशा में भी अग्रणी बन सके। इन ध्येयों को प्राप्त करने के लिए उन्होने राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की शृंखला का शुभारम्भ किया, जो अब बढ़कर 40 से भी ऊपर पहुँच गयी है। सर्वप्रथम दिल्ली में नेशनल फिजिकल लैबोरेटरी की स्थापना के बाद पूना में नेशनल केमिकल लैबोरेटरी की स्थापना की गयी। उस समय तक तो अपने देश में केवल इने–गिने विश्वविद्यालयों में ही उच्च कोटि के अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक अध्यापन कार्य कर रहे थे, उदाहरण के लिए एन.पी.एल. के निर्देशन के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर कार्यमाणिकम कृष्णन को आमंत्रित किया गया जो नोबल पुरस्कार विजेता सी.वी. रामन के सर्वप्रमुख सहयोगी रह चुके थे। एन.सी.एल. के लिए देश में उपयुक्त रसायनज्ञ उपलब्ध न होने के कारण इंग्लैंड से प्रोफेसर मैकबन को आमंत्रित किया गया।

इन महानिदेशकों के चयन में उनकी वैज्ञानिक ख्याति को ही प्रमुखता से ध्यान में रखा गया। स्वाभाविक ही था कि इन लोगों ने भी आरम्भ में अपना आधारभूत मौलिक वैज्ञानिक कार्य ही चालू रखा और प्रयोगशालाओं की स्थापना के मुख्य ध्येय 'देश के औद्योगीकरण' पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। सी.एस.आई.आर. प्रयोगशालाओं की मर्यादा को उच्चतम रखने के लिए इसकी प्रबन्धक समिति की प्रारम्भ से आज तक देश के प्रधानमंत्री ही अध्यक्षता करते रहे हैं। सौभाग्य से मेरा भी सम्बंध सी.एस.आई.आर. की प्रबन्ध समिति के सदस्य के रूप में सन् 1963 से ही हो गया था जब पंडित नेहरू और बाद में श्रीमती गाँधी इसकी अध्यक्ष थीं। हममें से अधिकांश सदस्य इसी बात पर चिंतित रहते थे कि हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं का औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादन कम्पनियों से कितना सम्पर्क स्थापित हो पाया है, जिससे उनके द्वारा गवेषित नयी पद्धतियों से वैश्विक स्तर पर उत्पादित माल से होड़ ली जा सके, परन्तु अधिकांश स्थलों पर इस ओर निराशा का ही आभास होता था। एक डेढ़ दशक बाद भी मोरार जी देसाई के प्रधानमंत्री काल में तो इस ओर विशेष रूप से उँगलियाँ उठाई गईं।

यद्यपि रसायनज्ञ होने के नाते मैं स्वयं भी डॉ0

मशेलकर की उच्चतम खोजों से अत्यन्त प्रभावित था, तथापि उनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय लगभग 1960 में हुआ, जब प्रो0 सी.एन.आर. राव की अध्यक्षता में एन.सी.एल. की प्रगति को आँकने के लिए बनाई गई समिति का मैं भी एक सदस्य था। डॉ0 मशेलकर अत्यन्त मृदुभाषी एवं मितभाषी हैं, परन्तु अपने थोड़े से शब्दों में ही एन.सी.एल. की उपलब्धियों का ऐसा वर्णन प्रस्तुत किया था कि कमेटी के सभी सदस्य आश्चर्यचकित रह गए। महानिदेशक नियुक्त होने के बाद भी वे मुझे सी.एस.आई.आर. की अनेकानेक समितियों में आमंत्रित करते रहे हैं। इन समितियों में उनकी निष्पक्षता एवं उच्च महत्वाकांक्षाओं और आदर्शों की झलक स्पष्ट मिलती रहती है।

डॉ0 मशेलकर ने तो 1995 में महानिदेशक का पद स्वीकार करते ही इस ओर विशेष ध्यान दिया। नीम और हल्दी जैसी उपचार पद्धतियाँ तो अपने भारत देश में प्राचीन काल से ही चली आ रही थीं, परन्तु आज लोलुपता और पेटेण्टिंग के युग में जब विदेशों में इन चिकित्सा पद्धतियों के भी पेटेण्ट लेकर उन पर ऐसा अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया कि हमारे देशवासियों के भी इनके उपयोग के लिए अमरीका जैसे देशों को 'रायल्टी' देने के लिए विवश होना पड़ता। डॉ0 मशेलकर ने बड़े यत्न और सूझबूझ से इस प्रकार की हानियों से देश को बचाया। प्राचीन काल से आज तक हमारे अपने महान देश में ऐसी उदारतापूर्ण विचारधारा प्रचलित रही है कि ज्ञान विज्ञान का अर्जन निजी स्वार्थ के लिए नहीं वरन् सर्वजन सुखाय के लिए ही किया जाये। हमारे देश में ही नहीं, पिछली शताब्दि तक तो संसार भर के अधिकांश वैज्ञानिकों की भी मनःस्थिति इसी प्रकार की थी। ब्रिटेन के अत्यन्त गरीब जिल्दसाजी के व्यवसाय से आगे बढ़े और संसार के सर्वप्रमुख वैज्ञानिक के रूप में उभरे माइकेल फैराडे का एक दृष्टांत तो सर्वविदित है। जब फैराड ने अपने अनेकानेक नवीनतम आविष्कारों में से एक 'इलेक्ट्रोमैग्नेटिक इण्डक्शन' की गवेषणा को प्रदर्शित किया था कि ताँबे के एक तार की एक कुंडली के मध्य यदि एक चुम्बक को घुमाया जाये तो कुण्डली के तार में विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है, साथ ही यदि तार की कुंडली में विद्युत धारा प्रवाहित की जाये तो उसके मध्य में रखा चुम्बक घूमने लगता है। सच तो यह है कि यह मामूली सी प्रतीत होने वाली गवेषणा इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि आज संसार भर में बिजली के उत्पादन में और विद्युत पंखों या अन्य मशीनों को चलाना इसी सिद्धान्त पर सम्भव हो सका है। फैराडे ने अपनी इस गवेषणा का उल्लेख अपने एक प्रसिद्ध भाषण में किया तो सभागार में उपस्थित ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने उनसे सवाल किया था कि इस गवेषणा से हमें क्या लाभ मिल सकता है ? फैराडे का सीधा सा उत्तर था कि, 'सरकार आने वाले दिनों में इस पद्धति पर टैक्स लगा कर असीमित धन एकत्रित कर सकेगी'। कितनी यथार्थवादी थी फैराडे की भविष्यवाणी !

भारतवर्ष जैसे– वसुधैव कुटुम्बकम् नीति को

श्रद्धांजलि

हिन्दी विज्ञान विश्वकोश के पुरोधा वयोवृद्ध साहित्यकार श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी का 3 अगस्त 2003 को इलाहाबाद में निधन हो गया। श्री द्विवेदी ने चालीस के दशक में 'हिन्दी विश्वभारती' नामक वैज्ञानिक विश्वकोश के दस खण्डों का सम्पादन किया।

11 जनवरी 1910 को उज्जैन में जन्मे श्री द्विवेदी जी की कर्मभूमि इलाहाबाद व लखनऊ रही। उनके साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ व अन्य अनेक संगठनों द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत किया गया था। विज्ञान परिषद् ने श्री द्विवेदी के सम्मान में जनवरी 1999 में 'विज्ञान' का विशेषांक प्रकाशित किया था।

विज्ञान परिषद् प्रयाग परिवार श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी जी के निधन पर हार्दिक शोक व्यक्त करता है।

मानने वाले देश में तो वैज्ञानिक गवेषणाओं के पेटेण्ट लेने की ओर विशेष ध्यान ही नहीं गया था। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है कि सन् 1995 में जब मशेलकर ने सी.एस.आई.आर. के महानिदेशक के पद को स्वीकार किया, तो इस संस्था द्वारा गिने चुने पेटेण्ट ही लिए जा सके थे परन्तु उनके प्रोत्साहन के फलस्वरूप सन् 2003 ही में अमरीका में लगभग 150 भारतीय पेटेण्ट रजिस्टर्ड किए जा चुके हैं। सच तो यही है कि मशेलकर के निर्देशन में सी.एस.आई.आर. का दृष्टिकोण और उपलब्धियाँ बहुत तेजी से बदल रही हैं। इस प्रगति के आधार पर आज भारत की तकनीकी दृष्टिकोण से विकसित देशों में गणना होने लगी है। 5–6 वर्षों की ऐसी महान सफलताओं के बाद भी असन्तुष्ट डॉ0 मशेलकर ने सन् 2001 में सी.एस.आई.आर. विजन एण्ड स्ट्रेटेजी का शुभारम्भ किया है, जिसके फलस्वरूप ही जनवरी 2003 में भारत सरकार की नई 'विज्ञान तथा तकनीकी नीति' का प्रतिपादन सम्भव हो सका है।

वे संसार की अधिकांश अकादमियों के फेलो हैं जिसमें ब्रिटेन की प्रतिष्ठित रॉयल सोसाइटी भी सम्मिलित है। स्वाभाविक है कि डॉ0 मशेलकर को अनेक सर्वोच्च सम्मानों से विभूषित किया जा चुका है जिसमे कुछ निम्न प्रकार हैं : एस.एस. भटनागर अवार्ड (1982), नायक स्वर्ण पदक (1985), फिक्की (फेडेरेशन आफ इंडियन चैम्बर आफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री) अवार्ड (1987), विश्वकर्मा मेडल (1988), भसीन अवार्ड (1991), बिड़ला अवार्ड (1993), राज क्रिस्टो अवार्ड (1995), गोयल अवार्ड (1996), खेतान मेमोरियल अवार्ड (1996), अतुर संगतानी अवार्ड (1998), श्री गुरू जी पुरस्कार, पूना (1998), टाटा अवार्ड (1998)। इन सब अवसरों पर और इसके अतिरिक्त दर्जनों अन्य अवसरों पर (या जब उनको विभिन्न विश्वविद्यालयों ने अपनी मानद उपाधियों से विभूषित किया), डॉ0 मशेलकर देश की तकनीकी प्रगति आदि सम्बन्धी जो अभिभाषण दिए हैं वे सब के सब एक दूसरे से सर्वथा विभिन्न विषयों पर हैं और अति उच्च कोटि के हैं। सन् 2000 में डॉ0 मशेलकर ने पूना में आयोजित इंडियन साइंस कांग्रेस के महाध्यक्ष पद से जो भाषण दिया था उसका शीर्षक था : 'नई सहस्राब्दियों में नए पंचशील'। ये पंचशील थे : 1. बालक केन्द्रित शिक्षा, 2. महिला केन्द्रित समाज, 3. मानव केन्द्रित विकास प्रक्रिया, 4. ज्ञान केन्द्रित वातावरण तथा 5. नवीन विचारधारा एवं आविष्कार केन्द्रित अपना देश। इतने विस्तृत क्षेत्रों को जिस सूक्ष्मता और सक्षमता से उन्होंने वर्णित किया था कि उपस्थित प्रधानमंत्री तथा सहस्त्रों वैज्ञानिक स्तब्ध रह गए थे।

प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष डॉ0 मशेलकर को 15 जुलाई 2003 को खेलशंकर दुर्लभ जी स्मारक भाषण के लिए जयपुर भी आमंत्रित किया गया है, जिसके लिए कुछ वर्ष पहले हमारे वर्तमान राष्ट्रपति कलाम जी भी हमें अनुग्रहीत कर चुके हैं।

4/682, जवाहर नगर
जयपुर

इरफान ह्यूमन पुरस्कृत

रिसेप्टिव एसेंशियल साइंटिफिक एजूकेशन एड्वांसमेंट रिसर्च कमेटी फॉर ह्यूमनिटी (रिसर्च) के निदेशक एवं युवा विज्ञान साहित्यकार इरफान ह्यूमन को लोकप्रिय विज्ञान लेखन के लिए इस्वा राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

यह पुरस्कार उन्हें लेखन के माध्यम से विज्ञान लोकप्रियकरण एवं संचार के प्रयासों पर राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार एवं इंडियन साइंस राइटर्स एसोसिएशन, नई दिल्ली द्वारा प्रदान किया गया है जिसमें एक प्रशस्ति पत्र, मेडल व पाँच हजार रुपये की धनराधि शामिल है। यह पुरस्कार उन्हें उड़िया के लोकप्रिय विज्ञान लेखक बसंत के. दास के साथ संयुक्त रूप से प्रदान किया गया है।

बायोमास ऊर्जा का महत्व

इं. राजनारायण पटैरिया

कल क्या होगा ? 25 या 30 वर्ष बाद अगली पीढ़ी किस दौर से गुजर रही होगी ? दुनिया के नक्शे पर हमारे देश का क्या स्थान होगा ? ये सहज स्वाभाविक सवाल सभी के होते हैं और इन्हीं के आधार पर भविष्य की तस्वीर बनती है। अतः भविष्य को ध्यान में रखकर वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण को नुकसान पहुँचाये बगैर जो विकास (वि–विचार, का–कार्यक्रम, स–संचालन) की जो रणनीति तैयार की जाती है वह समगतिशील विकास की रूपरेखा होती है। किसी भी तरह के कार्य के लिए ऊर्जा की उपलब्धता प्रमुख धुरी होती है। ऊर्जारहित विकास की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

आधुनिक जीवन की सुख–सुविधाओं को भी अगर दूर रखें तब भी ऊर्जा के बिना जीवन की जरूरतों की पूर्ति सम्भव नहीं है। वर्तमान में ऊर्जा किसी भी देश के विकास की सूचक है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी देश की प्रगति का अनुमान उस देश में ऊर्जा के उत्पादन और खपत से लगाया जा सकता है। हमारा देश गाँवों का देश है अतः देश की आर्थिक प्रगति में ग्रामीण क्षेत्र का अपना विशिष्ट स्थान है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन, औद्योगीकरण के लिए कच्चे माल की आपूर्ति इत्यादि के लिए ऊर्जा की आवश्यक मात्रा कृषि एवं ग्रामीण विकास का महत्वपूर्ण अंग है। आज कृषि पर लगभग 65 प्रतिशत लोग आश्रित हैं और देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान 29 प्रतिशत है।

वर्तमान समय में ऊर्जा उपलब्धि की समस्या जटिल होती जा रही है। उद्योग, कृषि एवं अन्य कार्यों में ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग हो रहा है। ऊर्जा के परम्परागत स्रोत– जैसे खनिज तेल, कोयला आदि सीमित हैं जबकि ऊर्जा की खपत असीमित है। अतः ऊर्जा पूर्ति के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत खोजे जा रहे हैं। इनमें बायोऊर्जा, सौर ऊर्जा एवं जल ऊर्जा प्रमुख हैं। ऊर्जा इन विभिन्न रूपों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। प्राकृतिक ऊर्जा द्वारा पर्यावरणीय क्षति के बिना ऊर्जा पूर्ति सम्भव है।

बायोमास एक बहुत ही विस्तृत रूप है और विभिन्न प्रकार की जैविक क्रियाओं से प्राप्त उत्पाद है। बायोमास को सीधे दहन करके कार्बनीकरण, तरलीकरण, गैसीकरण एवं अन्य रूपान्तर प्रणालियों के माध्यम से ठोस, तरल एवं गैसीय रूपों में प्रयोग किया जाता है। ऊर्जा हेतु विभिन्न प्रकार के ठोस, तरल एवं गैसीय रूपों में बायोमास प्रयोग किया जाता है। बायोमास ऊर्जा हेतु विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की जरूरत होती है। यही कारण है कि ऐसे कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिनके तहत बायोमास के विभिन्न पहलुओं पर खोज एवं अनुसंधान किया जा सके। इन परियोजनाओं में काठ ऊर्जा, ऐल्कोहल, ईंधन, ब्रिकेट्स, चारकोल एवं बायोमास गैसीकरण मुख्य हैं। बायोमास ऊर्जा की प्राप्ति में वनस्पतियों को गैस में परिवर्तित कर विद्युत उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार भारत जैसे विकासशील देश में ऊर्जा संकट को दूर करने का सबसे अच्छा प्रयास जैव पदार्थों से ऊर्जा प्राप्त करना है। विभिन्न पौधों में ईथेनॉल का उत्पादन करके उनका उपयोग डीजल, नेफ्था और गैसोलीन के विकल्प के रूप में किया जा सकता है। इस तरह से प्राप्त ऊर्जा

से ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा की पूर्ति पूर्णतया संभव होगी।

बायोमास के प्रकार

विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधे जो कि पृथ्वी पर एवं जल में होते हैं, एवं इनके उत्पाद जैसे विभिन्न प्रकार की फसलें एवं उनके अवशिष्ट पदार्थ, लकड़ी का बुरादा, सूखी पत्तियाँ, लेण्टाना, निर्गुण्डी, लटजीरा एवं विभिन्न प्रकार के अन्य खरपतवार, नारियल के खोल विभिन्न बायोमास हैं। बायोमास से प्राप्त ऊर्जा ठोस, तरल एवं गैसीय रूप में होती है। लकड़ी एवं कृषि के अवशिष्ट पदार्थ बायोमास के परम्परागत रूप हैं। बायोमास का द्वितीय रूप बायोमास को ईथेनॉल या मीथेनॉल में परिवर्तित करके तरल ईंधन के रूप में डीजल के साथ मिश्रित करके प्रयुक्त किया जाता है। बायोमास का तृतीय रूप है– किण्वन द्वारा वायु की अनुपस्थिति में एवं अवायुजीवी जीवाणुओं की उपस्थिति में बायोगैस में परिवर्तित करके उसके विभिन्न उपयोग।

बायोमास का रूपान्तरण

कृषि एवं अन्य जैविक अवशिष्ट पदार्थों को रासायनिक अथवा जैवरासायनिक अभिक्रियाओं के द्वारा ऊर्जा प्राप्त की जाती है। विभिन्न बायोमासीय स्रोतों, जैसे लकड़ी का बुरादा, कृषि से प्राप्त अवशिष्ट पदार्थ एवं अन्य फसलों इत्यादि को गैसीफायर (Gasifier) के द्वारा ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं। गैसीफायर मुख्यतः एक केमिकल रिऐक्टर होता है, जिसमें विभिन्न प्रकार की भौतिक एवं रासायनिक अभिक्रियाएँ चलती रहती हैं। बायोमास गैसीफायर में आगे बढ़ने से पहले सूखता है, गर्म होता है, फिर पायरोलाइज होता है। गैसीफायर से प्राप्त ईंधन की कैलोरी मात्र लगभग 950–1200 किलो कैलोरी/घनमीटर होता है।

गैसीफायर के विभिन्न प्रकार

गैसीफायर को निम्नलिखित आधारों पर विभक्त किया जाता है :

1. वायु के प्रवाह की दिशा के आधार पर।

2. आउटपुट या क्षमता के आधार पर।

1. गैसीफायर एक लम्बवत् रिएक्टर होता है जिसमें बायोमास के दहन के लिए वायु प्रवाहित की जाती है जो सम्भवतया ऊपर या नीचे की ओर अथवा क्रास प्रवाहित होती है। इसी आधार पर गैसीफायर अपड्राफ्ट, डाउन ड्राफ्ट या क्रास ड्राफ्ट कहलाते हैं।

2. आउटपुट या क्षमता के आधार पर गैसीफायर निम्नलिखित प्रकार के होते हैं–

1. लघु गैसीफायर– क्षमता 10 किलोवाट तक
2. मध्यम गैसीफायर– क्षमता 10–50 किलोवाट
3. बड़ा गैसीफायर– क्षमता 50–300 किलोवाट
4. बहुत बड़ा गैसीफायर– क्षमता 300 किलोवाट से ऊपर

गैसीफायर बेड के प्रकार के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :

1. स्थाई बेड एवं 2. तरलीकृत बेड

1. स्थाई बेड : स्थाई बेड के अन्तर्गत अपड्राफ्ट या क्रासड्राफ्ट गैसीफायर आते हैं। अपड्राफ्ट गैसीफायर से प्राप्त गैस में कोई राख नहीं होती बल्कि टार एवं कुछ जलवाष्प गैस के साथ हो सकती है क्योंकि इस प्रकार के गैसीफायर में गैस बगैर जले हुए ईंधन में से प्रवाहित होती है जबकि डाउनड्राफ्ट गैसीफायर में गैस नीचे से प्राप्त होती है। अतः प्राप्त गैस के साथ राख एवं टार इत्यादि होता है। इस प्रकार के गैसीफायर लकड़ी एवं कृषि अवशिष्ट पदार्थों के लिए उपयोगी होते हैं। क्रास ड्राफ्ट गैसीफायर में गैस ऊपर की ओर प्रवाहित होती है एवं यह 50 किलोवाट पॉवर उत्पादित्र के लिए उपयुक्त होते हैं।

2. तरलीकृत बेड गैसीफायर : इस प्रकार के गैसीफायर में विभिन्न प्रकार के बायोमास उपयोग में लाये जाते हैं इनकी क्षमता अधिक होती है एवं बहुत ही कम फैलाते हैं, इनकी ताप संग्रहण क्षमता अधिक होती है एवं फ्लूइडाइज्ड बेड में सामान्यतया बालू अथवा अन्य रिऐक्टिव पदार्थ का उपयोग होता है। गैसीफायर में बेड को द्रवित अवस्था में रखा जाता है एवं ताप

लगभग 750–950°C होता है।

सौर ऊर्जा के जैविक परिवर्तन के लाभ

1. अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है, जबकि सौर ऊर्जा का अन्य विधियों से परिवर्तन ऊर्जा में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

2. पर्यावरणीय प्रदूषण कम करने में सहायक होती है।

3. साधारण कृषि की तरह ही प्रयोग में आने वाले पौधे आसानी से उगाये जा सकते हैं, अतः विकासशील देशों में गाँवों में इनका उपयोग बहुत आसान है।

4. जहाँ पर अवशिष्ट पदार्थ एकत्रित होते हैं, वहाँ पर छोटे छोटे यूनिट लगाये जा सकते हैं।

5. यूनिटों से प्राप्त अवशिष्ट पदार्थों को पुनः उपयोग में लाया जा सकता है।

6. संयंत्रों से ऊर्जा प्राप्त करने में कम प्रदूषण फैलता है। अतः ग्रामीण परिवेश में सफाई एवं स्वास्थ्य की स्थिति में बायोमास के द्वारा प्राप्त ऊर्जा से काफी सुधार किया जा सकता है।

सौर ऊर्जा के जैविक परिवर्तन की सीमाएँ

सौर ऊर्जा के जैविक परिवर्तन की निम्नलिखित सीमाएँ हैं :

1. संयंत्रों की स्थापना में अपेक्षाकृत अधिक जगह की आवश्यकता होती है।

2. पेड़–पौधों की प्रकाश संश्लेषण की दक्षता बहुत कम होती है।

3. बायोमास का प्रति यूनिट क्षेत्रफल में घनत्व कम होता है।

4. बायोमास का संग्रहण एवं परिवहन मँहगा होता है।

5. बायोमास से प्राप्त गैस के द्रवीकरण की समस्या उठती है अतः सामान्य एल.पी.जी. की तरह सिलेण्डरों का उपयोग सम्भव नहीं है।

बायोमास ऊर्जा की उपयोगिता

बायोमास की तरह बायोमास ऊर्जा भी एक महत्वपूर्ण, सस्ता, प्रदूषणरहित, दुर्घटनारहित पारम्परिक ऊर्जा स्रोत है। यदि इस ऊर्जा का समुचित विकास हो एवं लोकप्रिय बनाया जावे तो ग्रामीण क्षेत्रों की बढ़ती हुई ऊर्जा की माँग इसके द्वारा पूरी की जा सकती है। केन्द्र शासन के अधीन गैर–पारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए देश के विभिन्न भागों में बायोमास अनुसंधान केन्द्र स्थापित किए हैं। राष्ट्रीय बायोमास के तहत बेकार पड़ी भूमि पर जलाऊ लकड़ी देने वाले पेड़–पौधों एवं झाड़ियाँ लगाने का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस प्रकार ऊर्जा खेती करके पर्याप्त ऊर्जा की प्राप्ति की जा सकती है क्योंकि भारत में 14 करोड़ 60 लाख हेक्टेयर बंजर भूमि है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बायोमास का सीधा उपयोग जलाऊ ईंधन के रूप में होता है। बायोमास से प्राप्त गैस का उपयोग विद्युत उत्पादन में किया जा सकता है तथा अन्तर्दहन इंजन पम्प में डीजल के साथ इसका उपयोग सिंचाई के लिए तथा थ्रेशर इत्यादि चलाने में होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में बायोगैस के साथ ही साथ बायोमास ऊर्जा के विकास की प्रबल सम्भावनाएँ हैं। इन दोनों ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा से किसी प्रकार का प्रदूषण या हानि की सम्भावना नहीं है बल्कि इनसे ऊर्जा प्राप्ति के साथ ही साथ खाद की भी प्राप्ति होती है। इस प्रकार बायोगैस एवं बायोमास भारत जैसे विकासशील देशों के लिए ऊर्जा संकट का समाधान करने में सक्षम है।

प्रवक्ता
लोक विज्ञान एंव प्रौ० सं०
म०गा०चि०ग्रा०वि०, चित्रकूट

ताज महल और उसका संरक्षण

विनोद शंकर गुप्त

ताज महल शिल्प कला का अपूर्व नमूना है। संसार की स्थापत्य कला के इतिहास में इसका बहुत ऊँचा स्थान है। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने यह समाधि अपनी प्रियतमा के लिए बनवाया था। यह विशाल समाधि आगरा में यमुना नदी के तट पर शान्त और निस्तब्ध वातावरण में स्थित है। नित्य ही इस स्मारक को देखने देश और विदेश के हजारों पर्यटक आते हैं। जो भी विदेशी पर्यटक भारत आता है उसकी यात्रा ताज महल को देखे बिना पूरी नहीं होती। भारतवर्ष के कोने कोने से पर्यटक यहाँ आते हैं। इस स्मारक को आप चाहे जिस कोण से भी देखें, एक नया रूप दिखता है। अलग अलग समय में देखने पर भी इसका सौंदर्य अलग अलग रूप धारण कर लेता है। सूर्य उदय से लेकर सूर्यास्त तक इसके ऊपर सूर्य के प्रकाश का प्रभाव पड़ता है। पूर्णिमा के अवसर पर यह बहुत ही आकर्षक लगता है परन्तु बहुत वर्षों से सुरक्षा कारणों से पूर्णिमा के अवसर पर इसे अब खोलना बन्द कर दिया गया है।

354 वर्ष बाद भी ताज महल के सौंदर्य में कोई अंतर नहीं आया है। इसका कारण है भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा इस स्मारक की अच्छी तरह देखभाल। इस स्मारक के संरक्षण पर भारत सरकार विशेष ध्यान दे रही है। ताज महल को वायु प्रदूषण के प्रभाव से बचाने के लिए सभी सम्भव उपाय किये जाते रहे हैं। पर्यटन मंत्रालय इस स्मारक के सौन्दर्य को बनाये रखने के लिए तथा पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए अब और भी अधिक ध्यान दे रहा है।
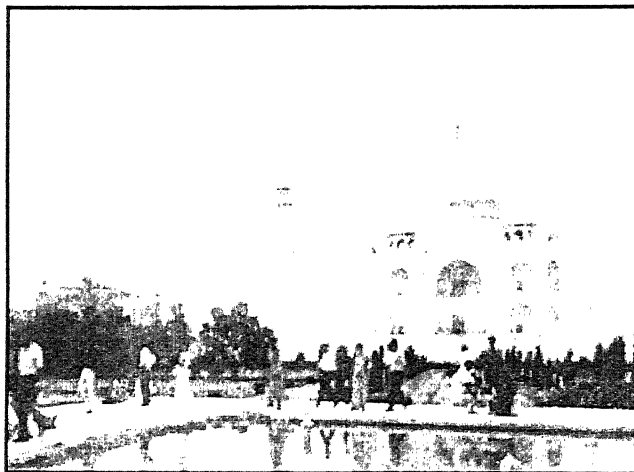
अधिकांश विद्वानों का मत है कि ताजमहल का निर्माण सन् 1631 से 1648 के मध्य हुआ। ताज के इतिहास से अधिक महत्वपूर्ण होगा उसके संरक्षण की जानकारी। ताजमहल की मरम्मत का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना ताजमहल का निर्माण काल। अन्य भवनों के समान ताजमहल भी निर्माण के केवल 4 वर्ष बाद ही कुछ निर्माण दोषों से व अप्राकृतिक कारणों से टपकने लगा था और उसके कुछ भागों मे दरारें पड़ गई थीं। शहज़ादा औरंगजेब कंधार से बुरहानपुर जाते हुए 28 नवम्बर सन् 1652 को आगरा रुका। ताजमहल देखने के बाद उसने अपने पिता बादशाह शाहजहाँ को एक

पत्र द्वारा सूचित किया कि ताज के बाहरी और भीतरी गुम्बद कई स्थानों से टपक रहे हैं तथा समाधि की दूसरी मंजिल के कमरों में दरारें पड़ गई हैं। उसने इस विषय में विशेषज्ञों की सलाह ली। विशेषज्ञों ने सलाह दी कि छत की चूने की गिट्टी को निकालकर नये चूने की गिट्टी डाली जाये। परन्तु उन्होंने गुम्बद की मरम्मत के विषय में अपनी असमर्थता प्रकट की। यह ज्ञात नहीं है कि गुम्बद की मरम्मत का कार्य शाहजहाँ के जीवन काल में किस विधि से किया गया था।

ताजमहल यमुना नदी के पानी के तल से इतनी ऊँचाई पर स्थित है कि पिछले 354 वर्षों में कितनी ही बाढ़ें आईं पर ताजमहल में पानी प्रवेश नहीं कर पाया। ताजमहल की नींव भूमि के नीचे पानी के तल तक ले जाई गई थी और पत्थर के चूने में चुनाई करके उसे भरा गया था। जमुना किनारे की तरफ ताज महल की नींव की मजबूती के लिए वेल फाउंडेशन पद्धति अपनाई गई थी। ताजमहल बाहर से सफेद संगमरमर का ही नजर आता है परन्तु ऐसा नहीं है। संगमरमर तो दीवारों की बाहरी सतहों पर ही लगा है। दीवारें व छतें ककय्या ईंटों व पत्थर के चूने के मसाले में बनाई गई थीं। संगमरमर को लोहे के पाँव (क्लेम्प) तथा विशेष चूने से जोड़ा गया था। यह संगमरमर जयपुर के निकट मकराना की खानों से लाया गया था। ताजमहल के बाहर और भीतर संगमरमर पर विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे बहुमूल्य पत्थरों की पच्चीकारी का काम बहुत आकर्षक है। समाधि के पास के अन्य भवन मस्जिद, मेहमानखाना, चारदीवारी आदि में बलुआ लाल पत्थर तांतपुर का लगाया गया है।

ताजमहल की मरम्मत का कार्य शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में शुरू हो चुका था। उसके बाद शायद मरम्मत का कार्य नहीं हुआ। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन शुरू हो गया था। सन् 1810 में कैप्टन ज्योसेफ टेलर ने कर्नल हाईडे की सलाह से ताजमहल की बाहरी सतह पर लगे संगमरमर के टूटे हुए पत्थरों की नये पत्थरों से मरम्मत कराई। सन् 1874 में ताज में फिर दरारें देखी गईं जिसकी लोकनिर्माण विभाग के अधिशासी अभियंता श्री जे. डब्ल्यू. अलैक्जेंडर ने मरम्मत कराई। दिसम्बर सन् 1903 में कैंडिल स्टोन के बाद लार्ड कर्जन भारतवर्ष के वायसराय हुए। उन्होंने ताज महल का अवलोकन किया और तब से लगातार ताजमहल की मरम्मत का कार्य होता रहा है। सम्प्रति भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ताजमहल तथा भारत सरकार द्वारा संरक्षित अन्य स्मारकों की मरम्मत तथा देखभाल कर रहा है।

स्मारकों की मरम्मत दो विधियों से होती है : 1. संरक्षण 2. पुनरुद्धार।

संरक्षण कार्य में स्मारक में आई क्षति को वहीं रोकने का प्रयत्न किया जाता है तथा उन कारणों का पता लगाया जाता है जिनके कारण स्मारक को हानि हो रही है। उसके लिए आवश्यक मरम्मत के कार्य किये जाते हैं। पुनः पुनरुद्धार में क्षतिग्रस्त भाग को दुबारा निर्मित किया जाता है। मरम्मत व पुनः निर्माण के समय यह पूरा ध्यान रखा जाता है कि स्मारक का मूल स्वरूप नष्ट न हो। मरम्मत तथा पुनः निर्माण के समय यह भी ध्यान रखा जाता है कि मरम्मत में काम आने वाली निर्माण सामग्री जहाँ तक सम्भव हो, वही हो जो स्मारक में बनाते समय लगाई गई थी। अगर वह सामग्री नहीं उपलब्ध होती, तो उसके स्थान पर अन्य कोई मिलती–जुलती सामग्री का प्रयोग होता है परन्तु बाहर से उसे ऐसा रूप दिया जाता है कि वह पहले जैसी ही लगे। स्मारक का सौन्दर्य बनाये रखने के लिए तथा पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए आजकल पुनः निर्माण कार्य स्मारकों में अधिक होने लगा है।

ए-14, न्यू स्टाफ कालोनी
जिन्दल स्ट्रिपन लि0
दिल्ली रोड
हिसार-125005

नाशीजीवों के जैविक नियंत्रण हेतु शत्रुओं के साथ साथ मित्र जीवों को भी पहचानें

सत्य व्रत द्विवेदी

कीटनाशी रसायनों के अनियमित प्रयोग से जहाँ कीटों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ रही है वहीं लाभप्रद जन्तुओं की उपस्थिति में तेजी से कमी आती जा रही है। साथ ही साथ वातावरण भी प्रदूषित होता जा रहा है। कीटनाशी रसायन हमारे भोजन द्वारा हमारे शरीर में भी प्रवेश पा रहे हैं। यदि हमारी खेती मात्र कीटनाशी रसायनों पर निर्भर रही तो भविष्य में फसल उगाना भी कठिन हो जायेगा तथा भुखमरी की समस्या भी आ सकती है जो बाढ़ एवं सूखा से भी गम्भीर समस्या है।

वातावरण में रसायनों के विषाक्त प्रभाव को देखते हुए वैज्ञानिकों ने जैविक नियंत्रण की ओर ध्यान देना शुरू किया। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक स्टेनहास (1949) ने सर्वप्रथम रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों द्वारा कीटों का नियंत्रण किया। इसके बाद भिन्न भिन्न देशों के विभिन्न वैज्ञानिकों ने इस विषय पर काफी कार्य किया। फलस्वरूप आज विभिन्न प्रकार के नाशीजीवों को खत्म करने हेतु विभिन्न प्रकार के जैव नियंत्रकों की खोज की जा चुकी है तथा भारत व अन्य देशों के कृषकों द्वारा उनको काफी बड़े पैमाने पर नाशीजीवों के प्रबन्धन हेतु उपयोग में लाया जा रहा है।

जैविक नियंत्रण

प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा हानिकारक कीटों अथवा नाशीजीवों को कम करना अथवा उन्हें नष्ट करना **जैविक नियंत्रण** कहलाता है। जैविक नियंत्रण के विभिन्न घटक इस प्रकार हैं :

(क) परभक्षी एवं परजीवी कीट : वे कीट जो अपने जीवन चक्र को पूरा करने के दौरान कई कीटों का भक्षण करते हैं परभक्षी कीट कहलाते हैं तथा वे कीट जो अपना जीवनचक्र एक होस्ट (पोषी) पर पूरा करते हैं वे परजीवी कहलाते हैं। सामान्यतः परजीवी कीट पोषक से आकार में छोटे होते हैं। ये जैविक नियंत्रण में काफी लाभदायक होते हैं क्योंकि ये अपने पोषक को खोजने की क्षमता रखते हैं।

(ख) फफूँदी (कवक) का प्रयोग : कीटों के नियंत्रण हेतु मुख्यतः इमपरफेक्टाई क्लास की फफूँदी का इस्तेमाल किया जाता है। इस प्रकार की फफूँदी कीटों में मस्कार्डिन बीमारी उत्पन्न करती है। फफूँदी द्वारा मुख्यतः लेपिडोप्टेरा (लार्वा), होमोप्टेरा (एफिड, सिलेंडरा एवं सेनकीट), कोलियोप्टेरा (भृंग या बीटिल), डिप्टेरा (मक्खी या मच्छर) तथा हाइमेनोप्टेरा (मधुमक्खी) वर्ग के कीटों में कवकजनित रोग उत्पन्न कराकर उन्हें नष्ट किया जाता है। (सारणी–1)

फफूँदी की क्रियाविधि : फफूँदी परपोषी को अर्न्तग्रहण के द्वारा संक्रमित करती है। इनके द्वारा कुछ एंजाइमों का स्रावण होता है जो अध्यावरण के कठोर काइटिन को मुलायम कर देता है जिससे इनका प्रवेश सरल हो जाता है। एक बार शरीर गुहा में प्रवेश करने के बाद फफूँदी तेजी से वृद्धि करती है तथा सभी ऊतकों पर अतिक्रमण कर देती है। इसके अतिरिक्त यह शरीर गुहा को फफूँद जाल से भर देती है जिससे फफूँद जाल की अत्यधिक वृद्धि के कारण कीटों का शरीर अत्यधिक कठोर तथा ममीकृत हो जाता है। ये फफूँदियाँ विषाक्त पदार्थ निकालती हैं जिन्हें माइकोटाक्सिन कहते हैं। ये विषाक्त पदार्थ टिटनस के समान प्रभाव उत्पन्न करते हैं जिसकी वजह से कीटों की मृत्यु हो जाती है। विभिन्न प्रकार की फफूँदियों में कुछ ऐसी भी हैं जो मृदाजनित हानिकारक फफूँदियों को भी नष्ट कर देती हैं। मित्र कवकों का विवरण सारणी–2 में दिया जा रहा है।

(ग) जीवाणुओं का प्रयोग : विभिन्न प्रकार के रोगों में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु मुख्यतः

संख्या	परजीवी/परभक्षी का नाम	नियंत्रित होने वाले कीट का विवरण
1.	क्रायसोपरला कारनिया	सफेद मक्खी, हरा फुदका, माँहू
2.	ट्राइकोग्रामा ब्रेसीलियेन्सिस	भिण्डी का फल एवं तना छेदक
3.	ट्राइकोग्रामा प्रेटीओसम	टमाटर का फल छेदक
4.	ट्राइकोग्रामा किलोनिस	बैंगन का फल एवं तना छेदक, धान का तना बेधक, धान का पत्ती मोड़क
5.	ट्राइकोग्रामा बैक्ट्री	पत्ती गोभी का हीरक पृष्ठ कीट
6.	कैलावीड व स्टैफीलीनीड बीटिल	कई प्रकार के कीटों के नियंत्रण हेतु
7.	स्पेन्टेलिस जाति	विभिन्न प्रकार के सूड़ियों के लिए, धान का हिस्पा धान का पत्ती मोड़क, अरण्डी का तना एवं फली छेदक
8.	ब्रेकान जाति	धान का हिस्पा, अरण्डी का तना एवं फली छेदक
9.	टेलेनोमस जाति	धान का तना बेधक
10.	टेट्रास्टीकस जाति	धान का तना बेधक, धान का पत्ती मोड़क
11.	ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम	धान का तना बेधक, धान का पत्ती मोड़क
12.	प्लेटीगेस्टर ओरायजी	धान का गाल मिज
13.	एनाग्रुस, ओलिकोसिटा गोनैटोपस सिर्टोराइनस लिपिडिपेनिस एवं मकड़ी की अन्य जातियाँ	विभिन्न फसलों में नुकसान पहुँचाने वाले फुदकों हेतु
14.	लेडी बर्ड बीटिल	माँहू एवं मिलीबग
15.	थिरोनिया जाति	अरण्डी का फली एवं तना छेदक
16.	स्टेथोरस पापरकुलस ओलीगोटा ओबीफारमीस स्कोलोथ्रिप्स सेक्समैकुलेट्स (मकड़ियाँ)	भिण्डी एवं बैंगन की लाल मकड़ी

अविकल्पी, सक्षम तथा विकल्पी होते हैं। अविकल्पी जीवाणुओं का परपोषी क्षेत्र अत्यन्त संकीर्ण होता है। इसके उदाहरण हैं बैसीलस पोपली एवं बैसीलस लैन्टीमारबस। बैसीलस पोपली के बीजाणु संरूपण का केवल एक ही प्रयोग अनेक वर्षों तक कीट को नियंत्रित करता है। विकल्पी जीवाणु को पुनः दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ये श्रेणियाँ कवचधारी एवं अकवचधारी हैं। कवचधारी के अन्तर्गत थूरिनाजियेन्सिस आता है जिसका प्रयोग व्यवसायिक रूप में अनेक नाशीजीवों के नियंत्रण हेतु किया जा रहा है। कवचधारी जीवाणुओं में डेल्टाइण्डोटाक्सिन नामक विष होता है जो मुख्य रूप से लेपिडोप्टेरा लार्वा की आँत पर आघात करता है। सक्षम जीवाणु का परपोषी क्षेत्र विस्तृत होता है तथा इनकी अत्यन्त सूक्ष्म मात्राएँ भी कीट को संक्रमित कर सकती हैं। सक्षम जीवाणु के उदाहरण स्यूडोमोनास, एयरुजिनोसा तथा सिरेसिया मरसीसेन्स प्रमुख रूप से हैं।

(घ) माइक्रोस्पोरिडिया : इसके अन्तर्गत प्रोटोजोआ वर्ग के कीटाणु आते हैं। सामान्यतः इनका उपयोग हम व्यावसायिक रूप में नहीं कर रहे हैं। इस वर्ग के अंतर्गत मुख्य रूप से नोसेमा जाति, जिसे ग्रास हापर एवं बीटिल के लिए तथा वायरीमोर्फा नेकाट्रिक्स

संख्या	मित्र कवक का नाम	नाशीजीव का विवरण
1.	बियुवेरिया बासियाना	बीटिल लार्वा, कैटर पिलर (बेधक), फुदका (ग्रास हाफर), सफेद मक्खी
2.	मेटेराइजियम एनीसोटली	बीटिल लार्वा, कैटर पिलर (बेधक) लीफ हायर (पत्ती का फुदका)
3.	वर्टीसिलियम लेकानी	माहूँ, सफेद मक्खी
4.	नोमुरायी रिलेई	कैटर पिलर (बेधक)
5.	ट्राइकोडर्मा जाति (बिरडी, हार्जियेनम)	हर प्रकार के मृदा जनित कवक रोगों हेतु
6.	एस्पार्जिलस नाइजर–बी	कवक जनित आलू एवं टमाटर के अगेती झुलसा हेतु (आल्टेरनेरियो सोलेनाई), मिर्च के एन्थैक्नोज (किट्ट रोग) रोग हेतु (कोलैटोट्राइकम कैप्सिसाई)
7.	ग्लाइपोक्लैडियम वायरेन्स	सेब के सफेद जड़ सड़न हेतु

जिसे विभिन्न प्रकार के कैटरपिलर (बेधक) के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है, आती हैं। चूँकि ये अत्यन्त प्रभावशाली नहीं हैं तथा ये कीटों को नष्ट न करके सिर्फ उसके प्रभाव को कम कर देती हैं अतः इन्हें व्यावसायिक स्तर पर प्रयोग में नहीं लाया जा रहा है।

(ङ) विषाणु : अब तक बहुत से ऐसे विषाणुओं की खोज की जा चुकी है जिनके द्वारा करीब 1100 प्रजातियों के कीटों की रोकथाम की जा सकती है। इन विषाणुओं को उनके आकारिकी एवं रासायनिक संगठन के आधार पर कई श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। इन तमाम श्रेणियों में सिर्फ बैक्लोविषाणु वर्ग ही ऐसा है जिसका प्रयोग व्यवसायिक स्तर पर किया जा रहा है। बैक्लोविषाणु (अन्तर्विष्ट विषाणु) के तीन प्रकार होते हैं जो संयुक्त रूप से कीट विषाणुओं के अधिकतम भाग को प्रदर्शित करते हैं।

1. न्यूक्लियर पालीहेड्रोसिस विषाणु : एक विषाणु सम्पुटिका में कई विषाणु कण होते हैं तथा ये विषाणु कण छड़ की आकृति के होते हैं जो बाहर से एक आवरण द्वारा संकोषित होते हैं। इनका व्यास 20–50 mu तथा लम्बाई 200–40.0 mu होती है।

2. ग्रेनुलोसिस विषाणु : ये नाभिकीय पोलीहेड्रोसिस विषाणु की भाँति होते हैं। एक विषाणु सम्पुटिका में केवल एक विषाणु कण होता है। इन कणों का व्यास 36–86 mu तथा लम्बाई 245–411 mu होती है।

ऊपर के दोनों विषाणुओं के विषाणु कण बड़े प्रोटीन युक्त पालीहेड्रल आक्लूजन बाडीज (पी.ओ.बी.) में बंधे होते हैं जो कुछ देर से क्रिया करता है।

3. गैर–अधिधारित बैकुलोविषाणु : यह विषाणु आवरणरहित होता है। इसमें पी.ओ.बी. नहीं बनता तथा इस विषाणु को र्‌हीनोसीरस भृंग से ढूँढा गया है।

विषाणु की क्रियाविधि : विषाणु की उष्मायन अवधि 5–20 दिन की होती है और संक्रमित लार्वा खाना छोड़ देता है। तदुपरान्त निष्क्रिय होकर मर जाता है। मृत्यु से कुछ पूर्व अथवा बाद में लार्वे की त्वचा कमजोर होकर टूट जाती है तथा विषाणु संक्रमण आरम्भिक अवस्था में लार्वे की मृत्यु से कुछ दिन पूर्व दिखाई पड़ता है। संक्रमण की अन्तिम अवस्था में लार्वे के रंग में परिवर्तन आ जाता है। त्वचा के टूटने के बाद इसके शरीर से द्रव के रूप में टूटे–फूटे ऊतक तथा बहुफलक निकलते हैं। संक्रमित लार्वे मृत्यु के समय प्रायः परपोषी पादप के ऊँचे भागों पर लटके मिलते हैं।

एन.पी.बी. एवं जी.वी. के विषाणु मुख्य रूप से हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा (फलछेदक– टमाटर, चना आदि) एवं स्पोडाप्टेरा लिट्यूरा (कपास का फलछेदक) के कीटों की रोकथाम के लिए व्यावसायिक रूप में वृहद स्तर पर प्रयोग किये जा रहे हैं।

संख्या	मित्र कवक का नाम	संस्तुत मात्रा/हिक्टर
1.	बैसिलस थूरिजियेनसिस (कुर्सटाकी)	1.0 किग्रा0/हे0
2.	बैसिलस पोपिली	1.0 किग्रा0/हे0
3.	एच.ए.एन.पी.वी.	1.5 X 10^{12} पी.ओ.बी. (750 लार्वा)
4.	एस.ई.एन.पी.वी.	1 X 10^{12} पी.ओ.बी. (500 लार्वा)
5.	वायरीमोर्फा नेकाट्रिक्स	1 X 10^{12} स्पोर्स (600 लार्वा)
6.	मेटारायिजियम एनीसोटली	1 X 10^{14} कोनिडिया (50 किग्रा0 चावल)
7.	बियुवेरिया बेसियाना	1 X 10^{14} कोनिडिया (5 किग्रा0 अनाज)
8.	नोमुराई रिलेई	5 X 10^{13} कोनिडिया (25 किग्रा0 अनाज)
9.	नोसेमा लोकस्टी	2.5 X 10^{9} स्पोर्स (एक ग्रासहापर)
10.	ट्राइकोडर्मा हारजियेनम	1 X 10^{14} कोनिडिया (एक ग्रासहापर)
11.	ट्राइकोडर्मा विरिडी	4–5 ग्रा0/किग्रा0 बीज
12.	ट्राइकोग्रामा किलोनिस	1.50 लाख अण्डा (कपास बालवर्म)
13.	ट्रा. वायरेन्स	50 हजार से 1.5 लाख अण्डा
14.	ट्रा. ब्रेसीलियेन्सिस	50 हजार से 1.5 लाख अण्डा
15.	ट्रा. प्रेटीयोसम	1.0 लाख अण्डा (टमाटर का फल छेदक)
16.	ट्रा. बैक्ट्री	0.50–0.75 लाख अण्डा (हीरक पृष्ठ कीट)

(च) सूत्रकृमि का प्रयोग : सूत्रकृमियों की कुछ जातियाँ कीटों के ऊपर परजीवी रहकर उन्हें नष्ट कर देती हैं। मुख्य रूप से रेहडीटोयडिया, टायलेनकोडिया, मरगेथोयडिया, एफेलेनकोयडिया तथा आक्सीरायडिया वर्ग के सूत्रकृमि कीट परजीवी पाये गये हैं। ये सूत्रकृमि बहुत से भृंगों, टिड्डों, शलभों तथा अन्य कीटों पर आन्तरिक परजीवी के रूप में मिलते हैं जिन्हें जैविक नियंत्रण के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। सूत्रकृमि डी.डी.–136 (न्यूओप्लेटेन कोरकोसी) को विभिन्न नाशीजीवों के नियंत्रण में प्रयुक्त किया जा रहा है। यह प्रायः प्रत्येक श्रेणी के नाशक कीटों के नियंत्रण में सफल पाया गया है। यह जीवाणु (एक्हेरोमोक्टर निमैटोफिलस) का वाहक भी है।

कीटों के कुछ अन्य परजीवी सूत्रकृमि मरमिस राविनीग्रिसेन्स, हेक्सामरमिस जाति, एगमरमिस डिकोडेरा, मरमिस इन्डिका, स्टीनरनेमैटिड्स जाति एवं हेटेरोरैहब्डिटिड्स जाति के हैं।

नाशीजीव प्रबन्धन हेतु विभिन्न मित्र जीवों के नाम एवं उनकी संस्तुत मात्रा : विभिन्न फसलों में नाशीजीवों की रोकथाम हेतु प्रयोग किये जा रहे मित्र जीवों के नाम एवं मात्रा सारणी–3 में दी जा रही है।

जैविक नियंत्रण से लाभ :

1. रसायनों की तुलना में ये सस्ता पड़ता है।
2. इनमें लक्षित जीवो के प्रति विशिष्टता होती है।
3. इनका प्रयोग पर्यावरण के अनुकूल रहता है।
4. इनके प्रयोग से लक्षित कीटों में कोई प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न नहीं होती है।
5. जैविक घटक स्वयं में फैलने व स्थायित्व प्रदान करने वाले होते हैं। जैविक घटकों को जब प्रयोग में लाया जाता है तो ये लम्बे समय तक खेत में पड़े रहते हैं और अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं जबकि रसायनों में ऐसा नहीं होता है।
6. ये प्रयोग किये जाने के बाद फसल, मृदा, जल, अन्य जीवों एवं वातावरण पर कोई विषाक्त प्रभाव नहीं छोड़ते।

क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, तिसुही
मड़िहान, मिर्जापुर–231310

गिद्ध के बाद अब गौरैया भी फुर्र

विजय चितौरी

पर्यावरणीय असंतुलन के कुफल अब एक के बाद एक आने शुरू हो गये हैं। दो दशक पहले तक जानवरों की लाशों को कुछ घंटों में ही चट करके खतम कर देने वाले सफाईकर्मी गिद्ध अब कहीं नहीं दिखते। अभी गिद्धों के लुप्त होने पर हायतौबा चल रही थी कि पता चला कि हमारे घर आँगन को चीं.चीं करके गुंजायमान करने वाली गौरैया भी गायब होने वाली है। शहर बाजार में तो अब यह कहीं दिखती नहीं। गाँवों में भी बहुत खोजने पर कहीं इक्की–दुक्की ही नजर आती है।

ज्यादा दिन नहीं हुए, करीब एक दशक पहले तक घर आँगन में झुंड की झुंड गौरैया रहती थी। घर में कहीं भी घोंसला रखने लायक जगह छूटी हो तो वहाँ गौरैया का घोसला जरूर दिख जाता। घर की औरतें जब कोई अनाज वगैरह साफ करती होतीं तों गौरैयों का झुंड आकर वहाँ बैठ जाता। बच्चों के मनोरंजन की ये प्रमुख साधन थीं। लेकिन एक दशक के भीतर यह गौरैया कब और कैसे लुप्त हो गयी ? कुछ पता ही नहीं चला।

स्वयं लेखक का ध्यान इस ओर तब गया जब उसने अखबार में उक्त विषय से सम्बन्धित एक छोटा समाचार पढ़ा। लेखक ने पहले स्वयं अपने घर का निरीक्षण किया। कहीं गौरैया नहीं दिखी। कुछ झरोखों में उसके पुराने घोंसले अवश्य मिले। फिर गाँव के अन्य लोगों से जानकारी ली। गाँव के अधिकांश लोग ऐसे मिले जिन्हें ध्यान ही नहीं था कि उनके घरों से गौरैया फुर्र हो चुकी है। गाँव भर में कहीं गौरैया के दर्शन न होने पर लेखक ने क्षेत्र में गौरैया की खोज की। आखिरकार लेखक के गाँव से 15–20 किलोमीटर दूर एक गाँव के लोगों ने बताया कि उनके यहाँ गौरैया हैं जरूर लेकिन पहले से अब बहुत कम रह गयी हैं। लेखक ने स्वयं एक मरियल सी गौरैया जमीन में दाना ढूँढते हुए देखा।

करीब 15 सेमी लम्बी और 50 ग्राम वजन वाली गौरैया चिड़िया भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, अफगानिस्तान व दक्षिण अफ्रीका में पाई जाती है। लगातार फुदकने वाली यह चिड़िया घर के अंदर झरोखों व अन्य खाली स्थानों तथा घने पेड़ों पर अपने घोंसले बनाती है। यह शाकाहारी होती है। हिन्दू समाज इसे सम्मान की दृष्टि से देखता है। घर में इसके बनाये घोंसले को नष्ट न करने की मान्यता है। मान्यता है कि जिस घर में इनके घोंसले होते हैं वहाँ
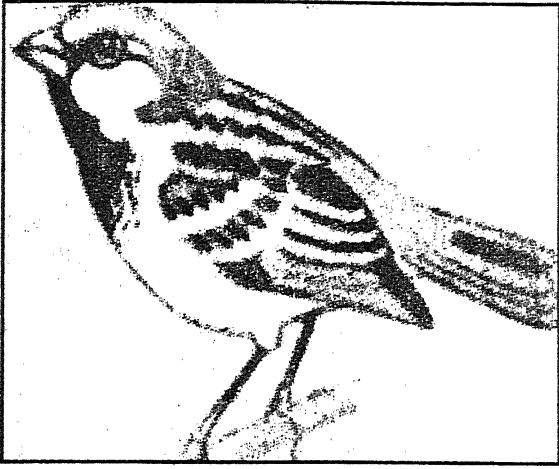
विवाद नहीं होते।

पक्षी विशेषज्ञ इस बात से हैरत में हैं कि आखिर गौरैया एकाएक कैसे लुप्त हो गयी। करीब एक वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के मुख्य वन्य जीव प्रतिपालक डॉ0 बेदी ने गौरैया की तेजी से घटती संख्या को गंभीरता से लिया। उन्होंने बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी के निदेशक डॉ0 असद अंसारी को पत्र लिखकर गौरैया के तेजी से लुप्त होने के कारणों को खोजने का आग्रह किया।

डॉ0 असद ने गौरैया के लुप्त होने के सम्बन्ध में अपनी प्राथमिक रिपोर्ट में दो कारण बताए। उनके अनुसार राज्य में गौरैया को जाल लगाकर पकड़ा जा रहा है। लोगों का भ्रम है कि इस चिड़िया को खाने से पौरुष बढ़ता है। दूसरे कारण में उन्होंने कीटनाशकों को जिम्मेदार ठहराया। कीटनाशकों से उपचारित खाद्य पदार्थों को खाने से गौरैया के अण्डों के ऊपरी खोल कमजोर हो जाते हैं जिससे अण्डा देते समय यह पक्षी का भार सहन नहीं कर पाता और टूट जाता है। डॉ0 बेदी प्रथम तर्क से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि जाल लगाकर पक्षी पकड़ने से कबूतर और फाख्ता भी कम हो गये होते। लेकिन उनके साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। हाँ, दूसरी बात में दम जरूर है। गिद्धों के लुप्त होने के सम्बन्ध में अब तक जो अध्ययन हुए हैं उनका निष्कर्ष भी कुछ ऐसा ही है। अध्ययनों से पता चला है कि गिद्ध जिन मृत पशुओं का माँस खा रहे थे, उनके शरीर में बड़ी मात्रा में कीटनाशक मौजूद था। यह कीटनाशक उन फसलों के खाने से आया था जिन पर कीटनाशक का उपयोग हुआ था। इसी कारण गिद्धों के अण्डों का कवच पतला पड़ गया।

गिद्धों को बचाने के लिए न केवल भारत सरकार वरन् विश्व समुदाय भी चिंतित है। गिद्धों के पुनर्वास के लिए हरियाणा के पिंजौर नामक स्थान पर गिद्ध पुनर्वास परियोजना प्रारंभ की गई है। परियोजना इंग्लैंड की 'डार्विन इनिशियेटिव' द्वारा सहायताप्राप्त है। 'डार्विन इनिशियेटिव' प्रकृति सरंक्षण हेतु अनुदान एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध करवाती है। ब्रिटेन के प्रकृति संरक्षण और जैव विविधता मंत्री इलियट गोखले गत 6–9 फरवरी 2003 को भारत में थे। उन्होंने उक्त दिवसों के दरम्यान अपने अन्य कार्यक्रमों के अलावा उक्त गिद्ध पुनर्वास केन्द्र का निरीक्षण भी किया था। डार्विन इनिशियेटिव द्वारा इस केन्द्र को अब 1,48,000 पौण्ड से अधिक धन मुहैया कराया जा चुका है।

गिद्ध पुनर्वास परियोजना एक अच्छा कदम है। लेकिन यह समस्या का स्थायी हल नहीं है। क्योंकि यदि उर्वरक और कीटनाशक ही इस समस्या के लिए जिम्मेदार हैं तो उनका उपयोग तो फिलहाल बन्द होना नहीं है। सरकार या विश्व समुदाय किस किस लुप्तप्राय जन्तु का संरक्षण करेगी ? आखिरकार घूम–फिर कर बात फिर वहीं आती है कि पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने के लिए ही सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। काश ! गौरैया के संरक्षण पर गिद्ध जैसा ध्यान दिया जाता !

ग्रामोदय प्रकाशन
घूरपूर- इलाहाबाद

मृदा एवं जल संरक्षण की तकनीकें

डॉ. उमाशंकर मिश्र

किसी भी देश की खुशहाली एवं समृद्धि के लिए जल, जमीन, जन, जंगल और जानवर आधारभूत संसाधन हैं। जल और जमीन की समृद्धि का प्रभाव जन, जंगल और जानवरों पर पड़ता है। वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं संवर्धन से जुड़ी संस्थाओं की प्रभावहीनता से भूमि एवं जल संसाधनों की विकृतियाँ एवं दोषपूर्ण दोहन हमारे सामने हैं, जिसके परिणामस्वरूप आगामी पीढ़ी के लिए उपलब्ध भावी संसाधनों में निरन्तर कमी होती जा रही है। अतः ऐसी स्थिति से निपटने के लिए मृदा एवं जल से जुड़े हुए सभी वैज्ञानिकों को इस दिशा में अथक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है क्योंकि भूमि एवं जल सह–सम्बन्धित संसाधन हैं और इनका प्रबन्धन इसी रूप में होना चाहिए। इसी प्रकार का सम्बन्ध जलीय चक्र में धरातल एवं भूमिगत जल का है। भूमि आधारित सभी उत्पादन गतिविधियाँ मृदा, जल, जैव पदार्थ एवं भूआकृति पर निर्भर करती हैं इसलिए इन अवयवों के संबंधित प्रबन्धन की आवश्यकता है।

– सम्पादक

हमारे देश की 329 करोड़ हेक्टेयर भूमि में से केवल 30.5 हेक्टेयर भूमि के ही आँकड़े उपलब्ध हैं। इनमें से 3.9 करोड हेक्टेयर भूमि गैर कृषि कार्य या शहरी क्षेत्र में शामिल है, जिसे अकृष्य एवं बंजर भूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसलिए बचे हुए 26.6 करोड़ हेक्टेयर भूमि का ही प्रबन्धन हमारी परिधि के अन्तर्गत है। इसमें 12.3 करोड़ हेक्टेयर भूमि गैर कृष्य है, तथा 14.3 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर कृषि होती है। गैर कृषि भूमि के 1.7 करोड़ हेक्टेयर भूमि को कृषियोग्य बेकार भूमि और 2.3 करोड़ हेक्टेयर भूमि को परती भूमि में वर्गीकृत किया गया है। इस प्रकार 4 करोड़ हेक्टेयर भूमि सिद्धान्ततः उत्पादन योग्य है, किन्तु आज यह अनुपजाऊ भूमि के रूप में है। कृषि भूमि में 8.3 करोड़ हेक्टेयर भूमि को जंगल एवं स्थायी चरागाह में वर्गीकृत किया गया है जबकि शेष केवल 3.5 करोड़ हेक्टेयर वन या चरागाहों में ही अच्छे पेड़ या स्थायी हरियाली है। शेष 4.8 करोड़ हेक्टेयर भूमि वनस्पतियों से पूर्णरूपेण वंचित है। खराब होते जंगलों को मिलाकर लगभग 8.8 करोड़ हेक्टेयर भूमि में कोई भी उत्पादन नहीं होता।

भूमि क्षमता के अनुसार भूमि का उपयोग

जल के विवेकपूर्ण एवं भूमि के सही उपयोग पर ही सतत् टिकाऊ उत्पादकता निर्भर करती है। मृदा का उपयोग बहुत हद तक उस भूभाग एवं मृदा के प्राकृतिक प्रकार के मानकों का कोई विस्तृत सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन अब तक नहीं हुआ। जल की उपलब्धता एवं भूभाग की स्थिति अलग अलग क्षेत्रों में भिन्न भिन्न होती है। फिर भी वर्तमान समय की सिंचाई व्यवस्था में उपर्युक्त का ध्यान नहीं रखा जा रहा है। वर्तमान विधियों में फसल का चुनाव पहले किया जाता है तथा अन्य उपाय बाद में किये जाते हैं, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि पहले मृदा की क्षमता को जाना

जाय, फिर उसके आधार पर फसल का चुनाव किया जाय। सिंचाई एक दोहरी तलवार की तरह है। यदि समुचित उपयोग किया जाये तो टिकाऊ उत्पादकता प्राप्त होती है और यदि ठीक प्रकार से उपचार नहीं किया गया तो लम्बी अवधि में उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

हमारा जल परिदृश्य एवं उसका उपयोग

21वीं सदी में सभी देशों का पानी एक ऐसा मूल्यवान संसाधन है जैसा कि 20वीं सदी में तेल था। यद्यपि भारत की वार्षिक वर्षा औसतन 1150 मिमी है, जो विश्व स्तर पर दक्षिणी अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर है, तथा कई अन्य देशों से बहुत अधिक है तथापि हमारे देश की जल संसाधन की स्थिति दयनीय है। देश में बहते हुए मिलियन करोड़ हेक्टेयर जल में से केवल 10 करोड़ हेक्टेयर मीटर जल ही मृदा द्वारा अवशोषित हो पाता है। दूसरी तरफ अन्धाधुन्ध जल उपयोग से जल स्तर को और नीचे कर दिया गया है। लवणीय जल तथा जलभराव का अतिक्रमण बढ़ता जा रहा है। भारत की लगभग 68 प्रतिशत भूमि शुष्क या अर्द्धशुष्क क्षेत्र में पड़ती है। जब ऊपरी चट्टानी क्षेत्र में वर्षा जल एकत्र होकर नीचे की तरफ तेजी से बहता है, तो मृदा को हानि पहुँचाता है। स्थानीय जनता द्वारा छोटी–छोटी झाड़ियाँ भी ईंधन हेतु काट ली जाती हैं। पशुओं की चराई के कारण घास का आच्छादन खत्म हो रहा है। साथ ही साथ पशुओं के खुरों द्वारा भी मृदा का ह्रास होता है। इसके अलावा नंगी भूमि पर हल्की वर्षा से भी मृदा अपने स्थान से हट जाती है तथा अपवाह ढाल की तरफ की मृदा को बहा ले जाता है। इसके अतिरिक्त वर्षा की अनिश्चितता, नगण्य अन्तःस्यन्दन व जल एवं मृदा की हानि के कारण भी अधिकांश शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की कृषि उत्पादकता घटती ही जा रही है जिसका मुख्य कारण वर्षा जल का असमान वितरण एवं जल संग्रहण की कमी है।

आधुनिक विधियों ने सिद्ध कर दिया है कि कम वर्षा वाले क्षेत्रों से भी अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए वांछनीय भूमि उपयोग उपागम के साथ संसाधनों के प्रबन्धन की ऐसी रणनीति आवश्यक है, जो वर्षा जल का संरक्षण, जल का अनुकूलतम प्रयोग, मृदा उर्वरता की प्रभावी देखभाल एवं बड़े तन्त्रों से कम किन्तु जल की निश्चित मात्रा सुनिश्चित कर सके। इस प्रकार यह उत्पादन की एक नई पद्धति की ओर ले जाता है जिसके द्वारा उत्पादकता एवं मृदा में टिकाऊपन कायम रखकर सुनिश्चित उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार जलसंभर आधारित खेती द्वारा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में विकास के नये आयाम व ज्यादा टिकाऊपन प्राप्त किए जा सकते हैं। हमारे देश में बहुत सी जल संभर परियोजनाएँ चल रही हैं, जिनके मुख्य उद्देश्य हैं :–

1. चयनित क्षेत्र में निरन्तर खाद्यान्न, ईंधन, चारा, रेशा आदि की वृद्धि हेतु भूमि जनसंरक्षण के साथ साथ हरीतिमा संवर्धन, पोषक तत्वों का प्रबन्धन, मिश्रित उद्यानीकरण, कृषि विविधीकरण, पशुपालन, कृषि वानिकी, जलीय खेती, घरेलू उत्पादन प्रणाली का प्रबन्धन एवं सामूहिक संसाधनों का उचित उपयोग।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे सीमान्त किसानों, खेतिहर मजदूरों व गरीब लोगों के लिए रोजगार।

3. सिंचित एवं बारानी क्षेत्रों में विकास की असमानता को कम करना तथा बारानी क्षेत्रों में जैविक संपदा व उत्पादकता की वृद्धि का वातावरण तैयार करना ताकि ग्रामीण जीवन में गुणात्मक सुधार हो तथा शहरों की ओर पलायन में कमी आये।

4. कृषि विविधीकरण के माध्यम से ग्रामीणों की आय में वृद्धि।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से आधुनिक कृषि

आधुनिक कृषि अधिक उपज देने वाली उन्नतिशील प्रजातियों पर आधारित है। इन प्रजातियों की गुणवत्ता, अत्यधिक रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, शाकनाशक एवं अन्धाधुन्ध सिंचाई के द्वारा ही अधिकतम उपज प्राप्त करना सम्भव प्रतीत होता है। परन्तु इसके दूसरे पहलुओं को देखा जाये तो इसके बहुत ही दुष्प्रभाव, विशेषकर मृदा एवं जल पर, पड़ता है। मृदा का ह्रास होता जा रहा है, जिसकी भरपाई नहीं की जा सकती है एवं साथ ही सूक्ष्मजीवों व मृदा की संरचना पर भी बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः

मृदा शनैः शनैः मृतप्राय होती जा रही है तथा ये विधियाँ आर्थिक दृष्टि से खर्चीली एवं पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ भी नहीं हैं। विशेष कर कृषि क्षेत्रों में उर्वरकों के नाइट्रेट तथा कीटनाशक यौगिक भूमिगत जल में पहुँचकर उसे भी प्रदूषित कर रहे हैं जिससे मनुष्यों का स्वास्थ्य, विशेषकर शिशुओं का स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से गतिशील टिकाऊपन

हमको पूर्णरूपेण आधुनिक कृषि पद्धतियों पर निर्भर रहकर अपनी परम्परागत कृषि विधियों को आज ही कृषि पद्धति में समाविष्ट करके बढ़ती हुई जनसंख्या की उदारपूर्ति करनी है। साथ ही साथ पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी इसे गतिशील एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। इसके अन्तर्गत मिट्टी की जाँच के आधार पर ही फसलों में 'समन्वित पोषण प्रबन्धन' अपनाना चाहिए, जो मृदा को उर्वर बनाये रखने की एक विधि है, जिससे कम लागत पर अधिक फसल उत्पादन और लाभ सुनिश्चित होता है, तथा पर्यावरण प्रदूषित होने की सम्भावना भी कम होती है। इसमें कार्बनिक खाद (जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, दलहनी फसलों का फसलचक्र में समावेश एवं जैव उर्वरक) एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। कार्बनिक खादें मृदा की उर्वरता को बढ़ाती ही हैं, साथ ही साथ उसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार लाती हैं तथा रासायनिक उर्वरकों एव रासायनिक दवाइयों द्वारा मृदा एवं जल पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को कम कर देती हैं।

मृदा उन्नतिकरण का महत्व

यदि हम जल चक्र में **मृदा उन्नतिकरण** की भूमिका को समझ लेते हैं, तब मृदा उन्नतिकरण के महत्व को बेहतर ढंग से जान पायेंगे। यही कारण है कि हम मृदा संरक्षण की बजाय मृदा उन्नतिकरण शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। इसका महत्व संरक्षण से कहीं अधिक है। मृदा संरक्षण में प्रायः मेड़बन्दी, कन्टूर सीढ़ी, घास उगाना और तिर्यक जुताई पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ये मृदा के अभिलक्षणों पर हमेशा प्रकाश नहीं डाल पाते। इस परिप्रेक्ष्य में मुख्य रूप से मृदा के चार गुणों पर प्रकाश डाला गया है : मृदा संरक्षण, जल धारण क्षमता, अन्तःस्यन्दन क्षमता तथा मृदा निर्माण प्रक्रिया।

मृदा संरचना से हमारा तात्पर्य मृदा के प्राथमिक कण (बालू, सिल्ट एवं क्ले), द्वितीयक कण (कोलाइडल क्ले, कार्बनिक पदार्थ, आयरन, एल्युमीनियम के हाइड्राक्साइड इत्यादि) द्वारा जुड़े हुए एक निश्चित संरचना में व्यवस्थित होते हैं। कार्बनिक पदार्थों की अधिक मात्रा मृदा की संरचना के साथ ही साथ मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को सुधारती है।

दूसरा महत्वपूर्ण गुण है जल धारण क्षमता। जल के सर्वोत्तम उपयोग के लिए हमें ऐसी मृदा की आवश्यकता है, जिसमें जन संग्रहीत करने की अच्छी शक्ति हो, साथ ही साथ अच्छे अन्तःस्यन्दन के भी अभिलक्षण हों। सामान्यतया थोड़े कार्बनिक अंशों वाली प्राकृतिक मृदा में उपर्युक्त में से किसी एक की कमी होती है। बलुई मृदा में बहुत अच्छी अन्तःस्यन्दन क्षमता होती है, किन्तु जलधारण क्षमता बहुत ही कम होती है। मृत्तिकायुक्त मृदा में कमजोर अन्तःस्यन्दन क्षमता होती है, पर जलधारण क्षमता अधिक होती है। इन दोनों के अच्छे समन्वय से जल का अधिक हिस्सा सतही जल अपवाह की बजाय भूजल में बदल जाता है तथा अधिक जलधारण क्षमता होने से वर्षा का प्रत्येक दौर ज्यादा लम्बे समय तक जल उपलब्ध कराता है।

दूसरी तरफ जैव पदार्थ को मिट्टी में मिलाने से अन्तःस्यन्दन क्षमता एवं जल धारण क्षमता में अनुकूलतम युग्म की दिशा बढ़ती है। बलुई मिट्टी में जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी, अन्तःस्यन्दन क्षमता में बिना ज्यादा गिरावट आये, होने लगती है। इसी प्रकार चिकनी मिट्टी में अन्तःस्यन्दन क्षमता में बढ़ोत्तरी, जलधारण क्षमता में बिना ज्यादा गिरावट आये ही होने लगती है।

अन्ततः मृदा उन्नतिकरण के ये उपाय मृदानिर्माण में भी सहायक हैं। इनसे मृदा स्तर का विकास भलीभाँति होता है। साथ ही साथ उनके गुणों में भी वृद्धि होती है। जलीय चक्र पर इसका प्रभाव सर्वविदित है। इसमें पौधों का जड़ क्षेत्र भी विकसित होता है तथा जड़ क्षेत्र की जलधारण क्षमता भी बढ़ जाती **शेष पृष्ठ 42 पर**

शहरीकरण पर्यावरण प्रदूषण का कारक

विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा की ओर से 14 जून 2003 को आयोजित 'पर्यावरण प्रबन्धन एवं नैतिक दायित्व' विषयक संगोष्ठी में विषय विशेषज्ञों ने पर्यावरण को स्वच्छ और संतुलित बनाये रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के सीमित दोहन की जरूरत बताई। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि न्यायाधिपति एन.एन. माथुर ने कहा कि विकास के साथ साथ हमें पर्यावरण संतुलन की ओर भी ध्यान देना होगा। विशिष्ट अतिथि यू.एम. सहाय ने वन संरक्षण की परंपरा को उजागर किया वहीं सरकारी पौधरोपण योजनाओं में जन भागीदारी को जरूरी बताया।

उन्होंने पर्यावरण के साथ ही वन्य जीव संरक्षण को भी जरूरी बताया। डॉ0 डी.डी. ओझा ने अदृश्य प्रदूषण के बारे में बताया तथा इसके बढ़ने के कारणों पर भी जानकारी दी। अध्यक्षीय उद्बोधन में हनुमान प्रसाद ने पर्यावरण प्रबंधन में नैतिक महत्ता उजागर की। परिषद् के सभापति के.एम.एल. माथुर ने परिषद् की गतिविधियों एवं पर्यावरण प्रबंधन के कार्यक्रमों की जानकारी दी। प्रो. एम.एल. माथुर ने शहरीकरण और जनसंख्या विस्फोट को रोकने की जरूरत बताई। डॉ0 एन.एस. राठौड़ ने पर्यावरण में हानिकारक एवं लाभकारी कीटों के बारे में विस्तार से बताया। डॉ0 कुंजन त्रिवेदी ने पर्यावरण प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी पर प्रकाश डाला।

डॉ0 डी.डी. ओझा
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग, जोधपुर शाखा

डॉ० उदय नारायण तिवारी शताब्दी समारोह सम्पन्न

सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी, साहित्यकार एवं हिन्दी के उन्नायक स्वर्गीय डॉ0 उदय नारायण तिवारी जी की जन्म शती के अवसर पर 25 जुलाई 2003 को हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद में एक सभा का आयोजन कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

इस अवसर पर उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय ने डॉ0 शिवगोपाल मिश्र की पुस्तक 'सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ0 उदय नारायण तिवारी : व्यक्तित्व और कृतित्व' का लोकार्पण किया।

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र की पुस्तक का लोकार्पण करते हुए प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय

पृष्ठ 40 का शेष ..

मृदा का कटाव इस तरह का होता है कि हमारे पाँव के नीचे की उपजाऊ मिट्टी खिसक रही होती है और हमें पता भी नहीं चलता (1 मिमी0, मोटी उपजाऊ मिट्टी की परत नष्ट हो जाती है), प्रति हेक्टेयर लगभग 15 टन मिट्टी नष्ट हो जाती है। इसे फिर से वैसा ही बनाने में वर्षों लग जाते हैं क्योंकि जल मृदा क्षरण का मुख्य कारण है। अतः यदि हम मृदा क्षरण को रोकने के उपायों को लागू करें तो ये उपाय जल संरक्षण में भी सहायक सिद्ध होंगे। जल द्वारा उत्पन्न भूक्षरण में कमी लाने हेतु निम्नलिखित उपाय किये जाने की आवश्यकता है :

1. अपवाह को नियमित एवं निर्देशित करना।
2. मृदा जल के प्रभाव को कम करना।
3. जल बहाव में कमी लाकर भूमि में अन्तःस्यन्दन को बढ़ावा देना।
4. मृदा की अन्तःस्यन्दन क्षमता को बढ़ाना।
5. मृदा संरचना में सुधार करना।

पानी को चलायें, दौड़ायें नहीं

भूसतह पर जिस वेग से जल गिरता है तथा सतह पर उसी रफ्तार से बह जाता है, उसी के अनुरूप भू–क्षरण होता है तथा उतना ही जल नियन्त्रण के बाहर चला जाता है। जितनी तेजी से जल बहता है, उतनी ही अधिक मृदा को साथ ले जाता है और जब यह धीमी गति से बहता है तो बहाव के रास्ते में ही मृदा को छोड़ देता है। पुनः जितनी तेजी से जल बहता है उतने ही कम समय तक भूमि पर रुकता है और उतना ही कम अन्तःस्यन्दन हो पाता है। जितनी धीमी गति से बहता है, उतने ही अधिक समय तक छोटे भूभाग पर रुकता है और उसी के अनुपात में यह अन्तःस्यन्दन द्वारा भूगर्भीय जल में मिल जाता है। इसी कारण मृदा एवं जल संरक्षण के संबंध में संक्षेप में यह कहा जाता है कि जल को चलने दो, दौड़ने न दो।

मृदा एवं जल संरक्षण के अनेक उपायों में से सदाबहार वानस्पतिक चादर एक महत्वपूर्ण उपाय है, जो प्रभावित भूभाग पर उचित रीति से कार्य करती है। जब वर्षा जल की बूँदें तीव्र गति से भूभाग पर चोट करती हैं, तो मिट्टी के कणों को अपने अपवाह के साथ साथ ले जाती हैं जिसे बूँद क्षरण कहते हैं। पौधों की जड़ें मृदा को बाँधती हैं तथा मृदा कटाव को वर्षा व बहते हुए जल को रोकने का कार्य करती हैं। बड़े वृक्षों को छतरी अर्थात् पौधों की पत्तियों तथा शाखाएँ वर्षा जल को पृथ्वी पर पहुँचने के पहले उसके वेग को कम कर देती हैं अर्थात् जब तक वर्षा की बूँदें जमीन पर पहुँचती हैं, उसका वेग कम हो जाता है जिससे मृदा के ऊपर एक अवरोधी चादर बन जाती है जो मृदा को क्षरण से बचाती है। मृदा क्षरण नियंत्रण का दूसरा कारण है मृदा की अन्तःस्यन्दन क्षमता। यह जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक जल मृदा द्वारा अवशोषित किया जायेगा, जो अधोसतह में पहुँचकर अपवाह को कम करता है। चूँकि भूमि के अन्दर जल बहाव की गति सतही अपवाह से बहुत कम है, इसलिए जल लम्बे समय तक क्षेत्र में रुका रहता है। कार्बनिक पदार्थों की अधिकतम मात्रा को मिट्टी में मिलाने से उनकी संरचना ऐसी बन जाती है, जिससे उनकी जल धारण क्षमता घट जाती है तथा साथ ही साथ अन्तःस्यन्दन की दर भी बढ़ जाती है और मिट्टी को ऐसी संरचना प्रदान करती है, जो आसानी से छिन्न भिन्न भी नहीं होती है।

वानस्पतिक अवरोध

भूक्षरण रोकने का एक अन्य उपाय वानस्पतिक अवरोध बनाना है। पर्याप्त रूप से एक दूसरे के नजदीक घास, फलीदार पौधों एवं झाड़ीदार पौधों का रोपण करना चाहिए, जिससे वे पानी के बहाव की गति को कम करते हुए मृदा को रोक सकें। कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ बहुत ही उपयोगी हो सकती हैं जैसे–

(अ) खेत की मेड़ पर जैव बाड़ लगाना : कृषि क्षेत्र के लिए यह उपाय मृदा संरक्षण हेतु बहुधा स्वीकार्य उपाय है। मेड़ को ऊँचा एवं चौड़ा बनाने में आर्थिक खर्च अधिक पड़ता है तथा उपजाऊ भूमि का क्षेत्रफल भी कम हो जाता है, जबकि जैव बाड़ इसकी तुलना में सस्ती है। जैव बाड़ के लिए ऐसी प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए जिन्हें कम दूरी पर मेड़ पर लगाया जाये तो वे मिट्टी को बाँध सके तथा आसानी से स्थापित हो सके। उदाहरण के तौर पर वेटीपर तथा मूँज घास प्रजातियों को अधिकांश लगाया जाता है।

(ब) पट्टियों में फसल उत्पादन : ऐसे क्षेत्र जहाँ पर जल द्वारा मृदा क्षरण की सम्भावना होती है,

वहाँ भूमि पर अवरोधी व आरोधी फसलों को एकान्तर पट्टियों में उगाते हैं। अवरोधी फसल की पट्टी अपधावन की मात्रा व गति को कम करने के साथ साथ ऊपर से अपधावन में बहाकर लायी गयी मिट्टी को भी अपने क्षेत्र में जमा कर देती है। पट्टियों में फसल उत्पादन निम्न प्रकार से होता है–

- कन्टूर पट्टिका खेती
- समतल पट्टिका खेती
- वायु पट्टिका खेती
- बफर अथवा अन्तरस्थ पट्टिका खेती

○ ढालू भूमियों पर ढाल के विपरीत दिशा में आरोधी या अवरोधी फसलों को पट्टियों में उगाना कन्टूर पट्टीदार खेती कहलाती है।

○ समतल क्षेत्रों में फसलों की पट्टियों में उगाना समतल पट्टीदार खेती कहलाती है। इसके अन्दर भी समान्तर पट्टियों में आरोधी व अवरोधी फसलें उगाते हैं।

○ जिन क्षेत्रों में मृदा क्षरण वायु द्वारा होता है, वहाँ पर आरोधी फसलों में ऊँचाई वाली फसलें जैसे–ज्वार, बाजरा व मक्का की पट्टी के बाद कम ऊँचाई वाली अवरोधी फसलें जैसे उड़द, मूँग आदि उगायी जाती हैं। इस प्रकार पट्टी वायु की दिशा के विपरीत लाइन में लगायी जाती है। इन पट्टियों में खेती करना वायु **पट्टिका** खेती कहलाता है।

○ पट्टीदार खेती में स्थायी बहुवर्षी फसलें जैसे घासें, दो दाल वाली फसलें, झाड़ियाँ उगाते हैं, तो इस प्रकार की पट्टी को **बफरपट्टिका** खेती कहते हैं।

कृत्रिम आवरण द्वारा संरक्षण कैसे ?

मृदा एवं जल के संरक्षित करने के लिए उसकी ऊपरी सतह पर भूसा, फसलों की पत्तियाँ या पालीथीन का कृत्रिम आवरण ही लाभकारी पाया जाता है। कृत्रिम आवरण की मृदा के ऊपरी सतह पर जितनी मोटी परत होती है, उतनी ही अधिक लाभकारी सिद्ध होगी। इसका प्रयोग कम क्षेत्रफल के लिए, जैसे फल–फूल, सब्जी एवं फसलों की नर्सरी एवं बगीचों के लिए उपयोगी होता है।

प्रवक्ता मृदा विज्ञान विभाग
कृषि एवं पशु विज्ञान विभाग
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय महाविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म0प्र0)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : **विज्ञान कोश (Science Encyclopedia)**
लेखक : डॉ. चन्द्र विजय चतुर्वेदी
प्रकाशक : शिल्पी प्रकाशन, 117सी/मीरापुर, इलाहाबाद,
मूल्य : 100 रु0, संस्करण : 2003, पृष्ठ : 112

विज्ञान कोश तैयार करना दुरूह कार्य है क्योंकि नित नए शब्द जुड़ते रहते हैं। इसके अतिरिक्त पृष्ठ सीमा और शब्द सीमा भी निश्चित कर पाना कठिन होता है। पाठक कई स्तर के होते हैं अतएव किन शब्दों को लिया जाय और किन्हें छोड़ा जाय यह तय कर पाना आसान नहीं। किन्तु डॉ0 चन्द्र विजय चतुर्वेदी ने इसे संभव कर दिखाया है। 112 पृष्ठों के लिए 1000 शब्दों को चुनने में लेखक ने विशेष सावधानी रखने का प्रयास किया है। इसलिए यह कोश आम पाठकों, विज्ञान के विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए उपयोगी है। इसमें रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भौतिक विज्ञान एवं अन्य विज्ञानों से शब्दों का चुनाव किया गया है और जहाँ तक संभव हो सका है, उनके विषय में समुचित जानकारी दी गई है।

हाँ, मुद्रण की त्रुटियाँ खटकती हैं। कहीं कहीं हिन्दी शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्द नहीं दिए गए हैं। एकरूपता का अभाव है। किन्तु कुल मिलाकर आकर्षक मुखपृष्ठ, शब्दों का चयन, शब्दों के विषय में दी गई जानकारी आदि प्रशंसनीय है। विज्ञान कोश पुस्तकालयों में रखने योग्य है। कोश पतला और हलका होने के कारण विद्यार्थी इसे अपने पास रखकर स्कूल–कालेजों में ले जा सकते हैं। इसके सस्ते संस्करण की भी आवश्यकता है। आशा है द्वितीय संस्करण में मुद्रण की त्रुटियों का परिहार हो जायेगा।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
सी.एम.पी. डिग्री कालेज, इलाहाबाद-211002

तृतीय गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा रविवार 27 जुलाई को विज्ञान परिषद् के संस्थापकों में से एक डॉ0 गंगानाथ झा की स्मृति में व्याख्यान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के भाषा विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष साहित्य शिरोमणि डॉ0 धर्मपाल मैनी ने मुख्य व्याख्यान दिया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय ने की।

डॉ0 मैनी ने अपने व्याख्यान में डॉ0 गंगानाथ झा जी के महान व्यक्तित्व का स्मरण करते हुए कहा कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में वही व्यक्ति नेतृत्व दे सकता है जो एक निश्चित धरातल को प्राप्त कर सदैव उससे ऊपर की ओर जाने का प्रयास करता है। सर सी. वी. रामन तथा संत विनोबा के बारे में अपने संस्मरणों द्वारा उन्होंने बताया कि सफलता का मूलमंत्र प्रतिभावान होने के साथ ही सतत् प्रयत्नशील होना भी है। आज विज्ञान के क्षेत्र में इन दोनों तत्वों का एक ही व्यक्तित्व में अभाव दिखता है। शायद यही कारण है कि स्वतंत्रता के पचास वर्षों बाद भी हमारे देश में कोई नोबेल पुरस्कार विजेता नहीं उत्पन्न हुआ।

अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो0 पाण्डेय ने कहा कि संस्कृत भाषा की उपेक्षा के कारण ही आज हम विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ते जा रहे हैं। शायद प्राचीन ऋषियों ने संस्कृत भाषा में विज्ञान को इस प्रकार गढ़ा था कि उसमें निरंतर शोध एवम् विकास की प्रेरणा और प्रवृत्ति थी। ऋषि भारद्वाज द्वारा लिखित अनेक कृतियाँ वैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण हैं।

कार्यक्रम का आरंभ डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' की सरस्वती वंदना से हुआ। कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो0 पाण्डेय तथा मुख्य वक्ता प्रो0 मैनी ने डॉ0 गंगानाथ झा के चित्र पर माल्यार्पण किया। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों का स्वागत करते हुए व्याख्यानमाला के आयोजन पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के संचालक देवव्रत द्विवेदी ने डॉ0 गंगानाथ झा तथा प्रो0 धर्मपाल मैनी का परिचय प्रस्तुत किया।

इस अवसर पर विज्ञान परिषद् द्वारा प्रतिवर्ष दिए जाने वाले विज्ञान लेखन पुरस्कारों का वितरण भी मुख्य अतिथि द्वारा किया गया।
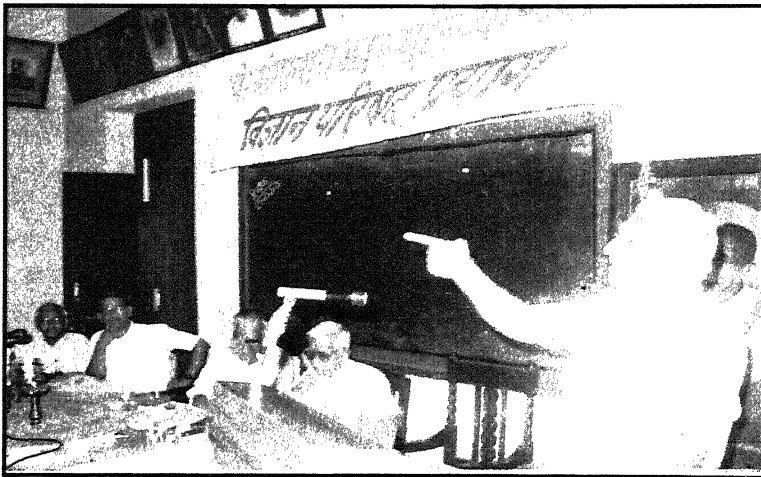
डॉ0 गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यान देते हुए साहित्य शिरोमणि डॉ0 धर्मपाल मैनी

इलाहाबाद के डॉ0 पृथ्वीनाथ पाण्डेय को ह्विवेटकर विज्ञान लेखन पुरस्कार तथा कांगड़ा हिमाचल प्रदेश के डॉ0 जे.एल. अग्रवाल और इलाहाबाद के श्री ज्योति भाई को गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार प्रो0 पाण्डेय ने प्रदान किए। डॉ0 पृथ्वीनाथ पाण्डेय की तीन पुस्तकों का लोकार्पण डॉ0 मैनी ने किया। इस अवसर पर श्री रमेश द्विवेदी ने भी अपने विचार व्यक्त किए। परिषद् के उपसभापति डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया। इस अवसर पर श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 पूर्णचंद्र गुप्ता, डॉ0 चंद्रिका प्रसाद, डॉ0 एन. सुन्दरम्, डॉ0 कैलाशचंद्र भाटिया, डॉ0 रामकिशोर शर्मा, श्री हरिमोहन मालवीय, डॉ0 आई.सी. शुक्ला अन्य अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

– देवव्रत द्विवेदी

राष्ट्रीय संगोष्ठी 'जैव प्रौद्योगिकी : मानव प्रगति की ओर' सम्पन्न

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा एक अगस्त 2003 को इलाहाबाद में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के समर्थन से किया गया। इस संगोष्ठी का विषय था– 'जैव प्रौद्योगिकी: मानव प्रगति की ओर'।

संगोष्ठी का उद्घाटन विज्ञान परिषद् प्रयाग के नव निर्वाचित सभापति तथा प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो0 एम.जी.के. मेनन ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में प्रो0 मेनन ने कहा कि विज्ञान की शिक्षा आरंभिक स्तर से ही मातृभाषा में दी जानी चाहिए, तभी बालकों में वैज्ञानिक अवधारणाओं को स्पष्ट रूप में ग्रहण करने की क्षमता विकसित होगी। उन्होंने कहा कि जैव प्रौद्योगिकी ने आज मानव प्रगति की अपार संभावनाओं के द्वारा खोल दिए हैं। आने वाली सदी जैव प्रौद्योगिकी की ही होगी। उन्होंने कहा कि इस प्रकार की संगोष्ठियों का उद्देश्य बच्चों में वैज्ञानिक अभिरुचि उत्पन्न करना है। अतः इन आयोजनों में बच्चों और किशोरों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। उन्होंने इस दिशा में विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा किए जा रहे प्रयासों के लिए साधुवाद दिया।

शेष पृष्ठ 48 पर

राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए विज्ञान परिषद् के सभापति प्रो0 एम.जी.के.मेनन
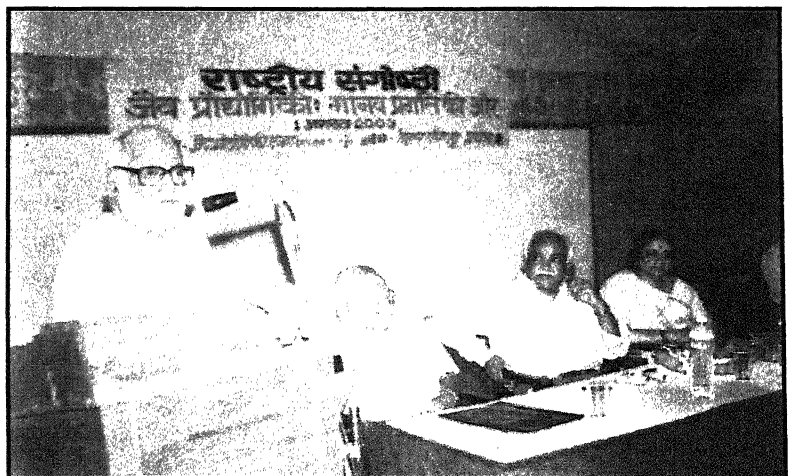
और अब ई-कचरे की समस्या

शिवेश कुमार

सूचना तकनीक की बात आते ही जेहन में साफ सुथरे और गंदगी से कोसों दूर रहने वाले माहौल का ख्याल आता है। सूचना तकनीक के प्रचलन के साथ ही यह बात भी सामने आई कि नई तकनीक से पर्यावरण के लिए अनुकूल स्थिति पैदा होगी, लेकिन यह एक तरह का भ्रम ही है। दरअसल सच्चाई कुछ और ही कह रही है। जैसे जैसे यह तकनीक लोकप्रिय हो रही है, एक नई समस्या पैदा होने लगी है। यह समस्या सूचना तकनीक के उपकरणों के उपयोग के खत्म होने बाद उनके आगे उपयोग और उन्हें नष्ट करने के उपायों से पैदा हुई। सूचना तकनीक के ज्यादा फैलने से इस समस्या में और भी इजाफा हो रहा है और कई देशों के पर्यावरण को गंभीर खतरा पैदा हो गया है या होने की आशंका उत्पन्न हो गई है। सूचना तकनीक के उपकरणों खासकर सेमीकंडक्टर, कैडमियम, कम्प्यूटर सर्किट बोर्ड आदि को बनाने में हजारों तरह के पदार्थों का इस्तेमाल किया जाता है। इनमें कई बहुत खतरनाक और जहरीले रसायन होते हैं।

इसके अलावा कम्प्यूटर मॉनीटर की कैथोड किरण ट्यूब, फ्लैट स्क्रीन आदि बनाने में लेड आक्साइड, बेरियम जैसे घातक रसायनों का उपयोग किया जाता है। चिकित्सकों और वैज्ञानिकों का कहना है कि इन उपकरणों का मानव शरीर पर क्या असर होता है, इसके बारे में लोगों को बहुत जानकारी नहीं होती है, लेकिन हाल में विदेशों में कई शोध किए गए हैं। इन शोध के नतीजों ने पश्चिमी देशों में लोगों के एक बड़े वर्ग को परेशान कर रखा है। शोधों के मुताबिक इन उपकरणों के निर्माण केन्द्रों में काम करने वाले लोगों में स्वास्थ्य संबंधी कई दिक्कतें की बातें सामने आई हैं। इन श्रमिकों में समय से पहले मौत, कैंसर तंत्रिका तंत्र में गड़बड़ी जैसी बीमारियाँ आम हो रही हैं। इसके अलावा कम्प्यूटरों के रिसाइक्लिंग करने वाले केन्द्रों में काम करने वाले लोगों की रक्त में खतरनाक रसायनों की काफी मात्रा मिलती है। लोगों के स्वास्थ्य सम्बंधी परेशानियों के साथ ही इन संयंत्रों से पर्यावरण पर भी खराब असर पड़ रहा है। इसके अलावा उन संयंत्रों में आम नागरिकों की बुनियादी सुविधाओं का बड़ा भाग हजम हो जाता है। एक अनुमान के तहत सेमीकंडक्टर बनाने के एक संयंत्र में लाखों लीटर पानी की रोज जरूरत होती है। साथ ही ऐसे संयंत्र में जितनी बिजली की जरूरत होती है उससे 60 हजार की आबादी वाले शहर की जरूरत पूरी की जा सकती है। इसके अलावा सालों से निर्माण कार्य के जारी रहने, उपयोग में आने वाले रसायनों की ठीक से देखभाल नहीं करने और अवशिष्टों पर उचित ध्यान नहीं देने से सम्बंधित इलाके की मिट्टी और भूमिगत पानी प्रदूषित हो गए हैं और संयंत्र के करीबी इलाकों की जमीन खेती जैसे कामों के लिए बेकार हो गई है।

यह समस्या अमेरिका, जापान, मेक्सिको, स्काटलैंड आदि कई देशों में गंभीर रूप ले चुकी है और अपनी सरकारों को सम्बंधित दिशा में कानून बनाने के लिए प्रेरित कर रही है। ऊपर वर्णित समस्याओं में एक खास बात यह है कि ये सीमित इलाके में ही फैले हैं, पर एक दूसरी समस्या और सामने आई है, वह है पुराने हो चुके कम्प्यूटरों और दूसरे उपकरणों को रखने या इसे निपटाने का। अमेरिका और कई ऐसे देशों में जहाँ कम्प्यूटर लंबे समय से चलन में थे, वहाँ लाखों कम्प्यूटरों को ठिकाने लगाने की समस्या पैदा हो गई है। इसके

अलावा पुराने हो चुके कम्प्यूटरों की तादाद भी बढ़ती जा रही है। **पुराने कम्प्यूटरों का ढेर यानी ई–वेस्ट** एक गम्भीर समस्या बन चुका है। अमेरिकी संस्था यूएस नेशनल सेफ्टी काउंसिल का आकलन है कि अगले कुछ सालों में अमेरिका में करीब 70 लाख कंम्प्यूटर पुराने हो जाएँगे। इनके ई–वेस्ट में घातक प्लास्टिक की मात्रा करीब दो अरब किलो होगी। इसके अलावा करीब पाँच लाख किलो लेड, दस लाख किलो कैडमियम, पाँच लाख किलो क्रोमियम, दो लाख किलो मरकरी या पारा भी ई–वेस्ट में शामिल होंगे।

कम्प्यूटरों की दुनिया में भी रोज शोध जारी है। हाल में लिक्विड क्रिस्टल डिस्प्ले तकनीक वाले कम्प्यूटर काफी लोकप्रिय होने लगे हैं। इससे बड़ी मात्रा में पुराने तकनीक से बने कम्प्यूटरों को बदलकर नई तकनीक से बने उपकरणों का प्रयोग बढ़ रहा है। नई तकनीकों ने पर्यावरणविदों को बेचैन कर दिया है। उनका कहना है कि अधिक संख्या में नई तकनीक वाले उपकरणों के प्रयोग से काफी तेजी से पुराने कम्प्यूटर कूड़े में बदलते जा रहे हैं।

मोबाइल फोनों की बढ़ती लोकप्रियता और पुराने व बेकार मोबाइल फोनों के कचरे ने भी पर्यावरणविदों की चिंता में और इजाफा कर दिया है। विकसित देशों ने ई–वेस्ट की समस्या से निजात पाने का एक आसान तरीका खोज निकाला है। वे अपने ई–वेस्ट का ज्यादातर भाग विकासशील और तीसरी दुनिया के देशों को भेज रहे हैं। इस प्रकार विकासशील और तीसरी दुनिया के देश **विकसित देशों का कूड़ाघर** बन रहे हैं। पिछले साल अमेरिकी संस्था बेसेल एक्शन नेटवर्क और सिलिकॉन वैली टॉक्सिक्स कोलिशन ने एक रिपोर्ट जारी की थी, जिसमें कहा गया है कि अमेरिका का करीब 80 प्रतिशत ई–वेस्ट एशिया भेजा जाता है। एशिया में भी तीन देशों खासकर चीन, भारत और पाकिस्तान में सबसे अधिक ई–वेस्ट भेजा जाता है। गौरतलब है कि इन देशों में ई–वेस्ट को नष्ट करने के लिए पारम्परिक तरीकों का ही इस्तेमाल किया जाता है। इसमें खुले आसमान में कूड़े को जलाना या जमीन के नीचे दबा देने जैसे तरीके शामिल हैं। गौरतलब है कि अमेरिका को छोड़कर बाकी देशों के बीच 1994 में हुए एक कम्प्यूटर करार में यह तय किया गया था कि ई–वेस्ट काफी घातक है और इसलिए इसे धनी देशों से गरीब देशों को भेजने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। हाल के आँकड़ों के मुताबिक चीन ने काफी कोशिश की है कि उसके यहाँ ई–वेस्ट नहीं आ सके। इस प्रयास में चीन एक हद तक सफल भी रहा है, पर भारत में ई–वेस्ट आने की दर में कोई कमी नहीं आई है। बाहर से आने वाले ई–वेस्ट को छोड़ दिया जाए, तो भारत की स्थिति कुछ बेहतर है। अभी देश में पूरी तरह से कम्प्यूटर संस्कृति का विकास नहीं हुआ है। इसके अलावा यहाँ पुरानी चीजों को सम्भाल कर रखने की प्रवृत्ति है। ऐसे में पुराने उपकरणों को नष्ट करने की समस्या विकराल रूप नहीं ले पाई है, पर संकेत मिल रहे हैं कि मौजूदा स्थिति बहुत दिनों तक रहने वाली नहीं है।

नई पीढ़ी में पश्चिमी देशों की संस्कृति तेजी से पनप रही है जिसमें बदलती तकनीक के साथ अपने उपकरणों को बदलने की आदत होती है। धीरे धीरे यह संस्कृति यहाँ भी जोर पकड़ रही है। इसके अलावा देश में हार्डवेयर बनाने वाले संयंत्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। बहरहाल, भारत में मौजूदा स्थिति भले ही बहुत चिन्ताजनक नहीं है, पर जल्दी ही भारत को भी इस समस्या से दो चार होना पड़ेगा। गौरतलब है कि यहाँ पिछले दशक में कम्प्यूटर की लोकप्रियता में तेजी से इजाफा हुआ है। विकसित देशों में यह बहुत पहले ही शुरू हो गया था, यहाँ तक कि आसियान के देश भी इस मामले में भारत से काफी आगे हैं। आगे रहने का नतीजा भी इन देशों को भोगना पड़ रहा है। भारत के लिए यह अच्छा है कि दूसरे देशों में यह समस्या पहले आई है। ऐसे में उनसे सीख ली जा सकती है और उसे ध्यान में रखकर रणनीति तैयार की जानी चाहिए।

–साभार

पृष्ठ 45 का शेष

जैव प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार की सचिव तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग की पूर्व सभापति डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि जैव प्रौद्योगिकी के स्वास्थ्य, आहार, पोषण, पर्यावरण संरक्षण आदि क्षेत्रों में योगदान से आज मानव प्रगति की एक नई राह पर अग्रसर हो रहा है। जैव प्रौद्योगिकी ने रोजगार के नए आयाम विकसित किए हैं। आज इन शोधों की जानकारी तथा लाभ जन जन तक पहुँचाने की आवश्यकता है।

संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में नेशनल एकेडमी आफ साइंसेज इलाहाबाद के अध्यक्ष डॉ0 जयपाल मित्तल ने भी विचार व्यक्त किए।

इस संगोष्ठी में व्याख्यान सत्र में नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर के अध्यक्ष डॉ0 पी.एन. टंडन ने 'मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी' मलेरिया अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली के पूर्व निदेशक डॉ0 वी.पी. शर्मा ने 'संक्रामक रोगों का निदान', सी.डी.आर.आई. लखनऊ के पूर्व निदेशक डॉ0 वी.पी. कम्बोज ने 'औषधीय प्रणालियाँ', नेशनल सेंटर फार सेल साइंस पुणे के निदेशक डॉ0 जी.सी. मिश्रा ने 'कोशिका जैविकी', सी.डी.एफ.डी. हैदराबाद के निदेशक डॉ0 एस.ई.हसनैन ने 'डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग' तथा नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी शिलांग के प्रो0 प्रमोद टंडन ने पादप जैव प्रौद्योगिकी विषय पर व्याख्यान दिए।

कार्यक्रम के आरंभ में डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' ने सरस्वती वन्दना प्रस्तुत की। अतिथियों द्वारा सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण तथा दीप प्रज्ज्वल के साथ संगोष्ठी का उद्घाटन हुआ। माल्यार्पण द्वारा अतिथियों के स्वागत के पश्चात् परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने संगोष्ठी के आयोजन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला। समारोह के अंत में विज्ञान परिषद् के उपसभापति डॉ0 एच.पी. तिवारी ने सभी के प्रति आभार ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन देवव्रत द्विवेदी ने किया। इस अवसर पर विज्ञान संकाय के अध्यापक तथा प्रोफेसर एवं नेशनल एकेडमी, इलाहाबाद के कौंसिल मेम्बर तथा नगर के अनेक विज्ञान प्रेमी तथा पत्रकार उपस्थित हुए।

– देवव्रत द्विवेदी

राष्ट्रीय संगोष्ठी के अवसर पर अध्यक्षीय भाषण देते हुए डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा

डॉ० शिव गोपाल मिश्र द्वारा विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002 के लिए सम्पादित, मुद्रित एवं प्रकाशित। नागरी प्रेस 91/186, अलोपीबाग, इलाहाबाद में मुद्रित।

प्रो० एम.जी.के. मेनन विज्ञान परिषद् के नए सभापति

देश के प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो0 एम.जी.के. मेनन विज्ञान परिषद् प्रयाग की अंतरंग समिति के नए सभापति चुने गए हैं। प्रो0 मेनन के नेतृत्व में नई अंतरंग समिति ने 1 अगस्त 2003 को कार्यभार ग्रहण किया। इस अवसर पर परिषद् के पूर्व सभापति प्रो0 एस.के. जोशी तथा डॉ0 मंजु शर्मा के साथ अन्य अनेक सदस्य उपस्थित रहे।

विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने परिषद् द्वारा सम्पन्न किए गए कार्यों तथा प्रकाशनों से सदस्यों को परिचित कराया और भावी योजनाओं के विषय में प्रकाश डाला।

नई अंतरंग समिति (2003–2004) के निर्वाचित सदस्य इस प्रकार हैं :

क्र. सं.	नाम	पद नाम
1	डॉ0 एम.जी.के. मेनन	सभापति
2.	डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा	पदेन उपसभापति
3.	डॉ0 एस.के. जोशी	"
4.	डॉ0 रामचरण मेहरोत्रा	"
5.	डॉ0 यशपाल	"
6.	श्री गजानन्द आर्य	"
7.	डॉ0 एम.डी. तिवारी	उपसभापति 'स्थानीय'
8.	डॉ0 देवेन्द्र कुमार राय	" 'बाह्य'
9.	डॉ0 शिवगोपाल मिश्र	प्रधानमंत्री एवं संपादक 'विज्ञान'
10.	डॉ0 अशोक कुमार गुप्त	कोषाध्यक्ष एवं मंत्री 'भवन'
11.	श्री विजय चितौरी	संयुक्त मंत्री
12.	डॉ0 के.एन. उत्तम	"
13.	डॉ0 ईश्वर चन्द्र शुक्ल	पुस्तकालयाध्यक्ष
14.	डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद	संपादक 'अनुसंधान पत्रिका'
15.	श्री दर्शनानन्द	आय–व्यय निरीक्षक
16.	डॉ0 पूर्णचन्द्र गुप्त	स्थानीय अंतरंगी
17.	डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी	"
18.	श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	"
19.	डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी, वाराणसी	बाह्य अंतरंगी
20.	श्री तुरशल पाल पाठक, नई दिल्ली	"
21.	प्रो0 वी.डी. गुप्ता, लखनऊ	"
22.	प्रो0 ओम प्रभात अग्रवाल, रोहतक	"
23.	डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र, मुम्बई	"
24.	डॉ0 डी.डी. ओझा, जोधपुर	"
25.	श्री रामचन्द्र मिश्र, मुम्बई	"
26.	श्री शिवेन्द्र कुमार पाण्डेय, पुरुलिया	"
27.	डॉ0 सुनील कुमार पाण्डेय, फैजाबाद	"
28.	डॉ0 उमाशंकर मिश्र, चित्रकूट	"
29.	डॉ0 अरुण आर्य, बड़ोदरा	"

परामर्शदात्री समिति

1. डॉ0 के.के. भूटानी, 2. डॉ0 एच.सी. खरे, 3. डॉ0 जी.एल. तिवारी, 4. डॉ0 के.बी. पाण्डेय, 5. डॉ0 श्रीमती कृष्णा मिश्रा

विशेष आमंत्रित सदस्य

1. डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी, 2. श्री हरिमोहन मालवीय, 3. श्री डी.एम. श्रीवास्तव, 4. श्री विभूति मिश्र, 5. श्री यू.एस. तिवारी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. रचनाएँ टंकित रूप में या सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जाएँ।
2. रचनाएँ मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जाएँ तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझाव का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जाएगी।

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 2460001